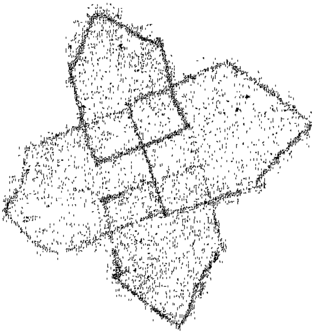


अँधेरी रात

(कहानी-संग्रह)

लेखक

श्रीब्रजेंद्रनाथ गौड़

(अतृप्त मानव, युद्ध की कहानियाँ, सिंदूर की लाज, कागज़ की नाव, मन के गीत, पैरोल पर, आज़ादी के मैदान में, बलिया और कलकत्ते का क़त्लेआम आदि पुस्तकों के रचयिता)

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६, लाटूश रोड

लखनऊ

प्रथम बार] विक्रम-संवत् २००३ [मूल्य [redacted] 2)

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. दिल्ली-ग्रंथागार, चर्खेवालाँ, दिल्ली
२. प्रयाग-ग्रंथागार, ४०, कास्थवेट रोड, इलाहाबाद
३. काशी-ग्रंथागार, मच्छोदरी-पार्क, काशी
४. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
५. साहित्य-रत्न-भंडार, सिविल लाइंस, आगरा
६. हिंदी-भवन, अस्पताल-रोड, लाहौर
७. एन्० एम्० भटनागर ऐंड ब्रादर्स, उदयपुर
८. दक्षिण-भारत-हिंदी-प्रचार-सभा, त्यागरायनगर, मदरास

नोट—हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें। हम उनके यहाँ भी मिलने का प्रबंध करेंगे। हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बँटाइए।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

समर्पण

मोती भाई

को

'निज'

परिचय—

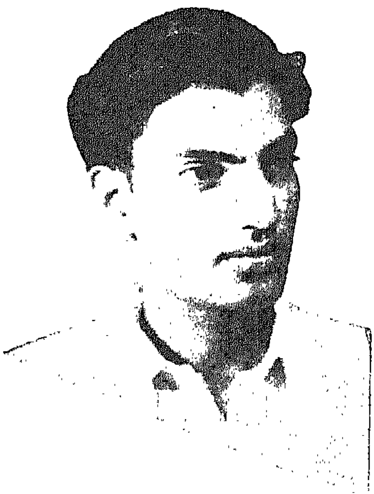
इस कहानी-संग्रह के लेखक श्रीब्रजेंद्रनाथ गौड़ हिंदी-प्रेमी पाठकों से अपरिचित नहीं हैं। गौड़जी ने अल्पायु में ही जो साहित्यिक उन्नति की है, निश्चय ही वह प्रशंसनीय है। उनकी लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें से पैरोल पर-नामक राजनीतिक उपन्यास सन् ४३ में जब्त कर लिया गया था। प्रसन्नता की बात है कि इस उपन्यास से लोकप्रिय सरकार ने ज़ब्ती उठा ली है। रेडियो पर भाषण देनेवालों और रेडियो के लिये नाटक-काव्य और कहानियाँ लिखनेवालों में भी गौड़जी का प्रमुख स्थान है। साथ ही वे पत्र-पत्रिकाओं में भी नियमित रूप से लिखते हैं। लगभग दो वर्षों से गौड़जी बंबई चले गए हैं, जहाँ आपने कई सिनेमा-चित्रों के गीत व संवाद लिखे हैं। इन चित्रों में सावन, रत्नावली, पनिहारी, वे दोनो, मगधराज, नासिरउद्दीन, स्वामिभक्त तथा नीरा और नंदा प्रमुख हैं। आजकल आप काग़ज़ की नाव तथा हरिजन-सेवक-नामक राष्ट्रीय चित्र लिख रहे हैं। साथ ही कलकत्ते के सांप्रदायिक दंगे, आज़ाद हिंद फ़ौज और अगस्त-आंदोलन पर भी आपने पुस्तकें लिखना आरंभ कर दिया है।

गौड़जी का यह कहानी-संग्रह अनेक कारणों से हमारे पाठकों को पसंद आएगा। यदि हमारी यह आशा सच निकली, तो हम उनकी कुछ और पुस्तकें भी छापेंगे।

कवि-कुटीर
लखनऊ, ४-६-४६

दुलारेलाल
सावित्री दुलारेलाल

अँधेरी रात



श्रीब्रजेन्द्रनाथ गौड़

ये कहानी-संग्रह—

इस कहानी-संग्रह की अधिकांश कहानियाँ नई नहीं हैं। इन्हें मैंने एक साथ नहीं लिखा। यही कारण है कि इनकी भाषा-शैली में कहीं-कहीं कुछ अंतर नज़र आता है। इसकी कहानियाँ माधुरी, सरस्वती, जयाजी प्रताप, संसार, आवाज़, भारत, कुंकुम, विश्वमित्र, आज आदि पत्रों में प्रकाशित हो चुकी हैं। इन पत्रों से ली गई इन कहानियों के लिये मैं पत्र-संपादकों को धन्यवाद देता हूँ।

इस संग्रह की कुछ कहानियाँ भाव-पूर्ण हैं, कुछ घटना-प्रधान, कुछ मनोवैज्ञानिक, कुछ वर्णनात्मक और परिचयात्मक। कला और साहित्य की कसौटी पर संभवतः सब कहानियाँ खरी न उतरें, किंतु इतना मुझे विश्वास है कि पाठक इन्हें पसंद करेंगे। ये कहानियाँ उन्हें निश्चय ही रोचक प्रतीत होंगी।

चूँकि गंगा-पुस्तकमाला से प्रकाशित होनेवाली मेरी यह पहली पुस्तक है, इसलिये मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि इस परिवार में भी मेरे पाठकों की एक निश्चित संख्या हो जायगी, और मैं अपनी आगामी पुस्तकों में उनके विचारों का आदर कर सकूँगा।

उर्मिला-ऑफ़िस, लखनऊ
श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव, १६४६ ई०

व्रजेंद्र गौड़

कहानी-क्रम

	पृष्ठ
१. अँधेरी रात	१
२. भावी कलाकार	६
३. राह के मुलाक़ाती	१८
४. अकेला	२५
५. सौदा	३४
६. सूना घर	४६
७. दीनों के भगवान्	५३
८. न्याय के लिये	६०
९. परंपरा	७१
१०. तीन तिनके	८२
११. दीवार का छेद	९३
१२. बीती बातें	१०४
१३. फ़रार	१११
१४. अनिल और पद्मा	१२७

अँधेरी रात

रात जब घनी हो जाती है, और कुहरे की मोटी चादर के नीचे गाँव के खेत-खलिहान, मकान और बाग़-बगीचे ऊँघने लगते हैं, तब गाँव का बूढ़ा चौकीदार लाठी पटक-पटककर ऐलान करने लगता है—"जागत रहियो, चोरन को भभ्भर है।"

इमली के घने पेड़ के ऊपर चमगीदड़ों ने बेहूदे तरीक़े से पर फड़फड़ाना शुरू कर दिया था, और किनारेवाले नीम की किसी डाल पर बैठा उल्लू का जोड़ा डरावनी आवाज़ में बोलने लगा था। आसमान बिलकुल अँधेरा था, तारों की धुँधली ज्योति लुक-छिप कर रही थी। गंदे नाले के किनारे, नरकुल की झाड़ियों से, सियार की "हुआ-हुआ" की आवाज़ आ रही थी, जिसे सुनकर गाँव के कुत्ते भूँकने लगते थे। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी, जैसे हवा अपने साथ बर्फ़ के बगूले लिए आ रही हो।

लोचन तेज़ी से चला आ रहा था। स्टेशन बहुत पीछे छूट गया था, और वहाँ बजनेवाले ग्यारह के घंटे की गंभीर आवाज़ गाँव तक चली आ रही थी।

आम के बाग़ में आकर लोचन ने देखा, चौकीदार के घर की खिड़की का एक पट ज़रा-सा खुला है, और दिए की हल्की

रोशनी सामने आम की पत्तियों पर पड़ रही है। वह दीवार से सटकर धीरे-धीरे आगे बढ़ा, और खिड़की के पास आकर खड़ा हो गया। फिर उसने चारों ओर होशियारी से देखा। तभी उसे सुनाई पड़ा कि गाँव के उस किनारे चौकीदार ने "जागते रहो" की पुकार लगाई है।

लोचन ने इतमीनान की एक साँस ली, और सोचा कि जब तक काका यहाँ आएँगे, तब तक मैं चंपा से बातें करके वापस लौट जाऊँगा। उसने खिड़की के खुले हिस्से से अंदर झाँककर देखा कि चंपा खाट पर लेटी है, और दिए की रोशनी उसके सुंदर चेहरे और शरीर के उतार-चढ़ाव पर पड़ रही है। उसके चेहरे पर बालों की दो-चार लटें आ पड़ी हैं, और ओठों के जोड़ दब गए हैं; जिससे वह मुस्कराती-सी मालूम होती है। लोचन प्यासी आँखों से उधर देखता रहा, और उसकी साँस तेजी से चलने लगी।

नाले के किनारे, नरकुल की झाड़ियों में, रह-रहकर सियार बोलने लगते हैं, और उनकी आवाज सुनकर कुत्ते भूँकने लगते हैं। कभी-कभी उल्लू की भद्दी आवाज सुनकर लोचन चारों ओर देखने लगता है, और जब कोई चमगीदड़ उसके सिर के ऊपर से उड़ जाता है, तो वह भौचक्का-सा इधर-उधर ताकने लगता है। चारों ओर अँधेरा छाया है, और सर्द हवा चल रही है। लोचन अपने शरीर को कंबल में लपेटे खड़ा है, और खिड़की की राह चंपा को प्यासी आँखों से देख रहा है। गाँव

के दूसरे किनारे, जहाँ जमींदार की कोठी है, चौकीदार "जागते रहो" की पुकार लगा रहा है।

लोचन ने सीकचे के अंदर हाथ डालकर खिड़की का एक पट पूरा खोल दिया, और दिए की रोशनी बाहर के ज्यादा हिस्से में फैल गई। उसने खिड़की से सिर मिलाकर धीरे से पुकारा—"चंपा !"

चंपा जैसे किसी मीठे स्वप्न की गोद में खोई पड़ी थी। उसके चेहरे पर मधुर मुस्कान थी, और ऐसा जान पड़ता था कि वह परियों के देश की सैर कर रही है।

खिड़की पर हल्की-सी थपकी देकर लोचन ने फिर पुकारा—"चंपा !......सुनो।"

लेकिन चंपा ने फिर भी नहीं सुना। वह वैसे ही मुस्करांती-सी सोती रही, वैसे ही सुख द स्वप्न की मादकता में उलझी रही।

लोचन परेशान-सा होने लगा। उसकी आँखों के सामने बीते दिन नाचने लगे—किस तरह दशमी के मेले में उसने चंपा को देखा था, और किस तरह वह उसकी ओर आप-से-आप आकर्षित हो गया था, और चंपा के घर तक आया था। फिर दिवाली के दिन वह चुपके-चुपके आकर चंपा से बात कर गया था। वह प्रथम परिचय और मिलन कैसा कहानी-सा लगता है। चंपा कितनी भोली और आकर्षक है। वह उसके विना कैसे जीवित रह सकता है ? वह हर दशा में चंपा को प्राप्त करेगा।

चाहे कोई भी उसकी राह में आए, वह उसकी परवा नहीं कर सकता।

लोचन को याद आया, उस दिन चंपा ने कहा था —"तुम तो पारवाले गाँव के ज़मींदार के लड़के हो। शहर में पढ़े हो। तुम्हारे ब्याह में तो हज़ारों रुपए मिलेंगे। तुम्हें पढ़ी-लिखी और सुंदर-सी बहू मिलेगी। मैं फूहड़, गँवारिन भला तुम्हारे योग्य हूँ। तुम मुझे भूल जाओ। मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ।"

तब लोचन ने धीरे से कहा था—"यह तो मन मिले की बात है चंपा! जहाँ मन मिल गया, वहाँ ग़रीब-अमीर का सवाल क्या? भगवान् ने तो ग़रीब-अमीर नहीं बनाए। ग़रीब-अमीर तो हम आप-से-आप एक दूसरे को समझने लगे हैं। भगवान् ने तो हमें आदमी बनाया है; हमारे ख़याल्लात नहीं बनाए। इसलिये जो हम हैं, उसी को समझें, और उसी तरह ज़िंदगी के रास्तों पर चलें। आदमी के बनाए हुए नियम हमारे रास्ते नहीं रोक सकते। हम परमात्मा के बनाए नियम पर चल रहे हैं। प्रेम तो परमात्मा का रूप है।"

तब भोली चंपा ने कहा था—"तुम शहर में पढ़े हो। प्रेम का रूप जानते-समझते हो, मैं तो नहीं जानती। हाँ, इतना जानती हूँ कि जब तुम्हारा ख़याल आता है, तो मन में जाने कैसी मीठी-मीठी पीड़ा-सी होने लगती है? फिर भी तुम्हारी भलाई के लिये कहती हूँ कि तुम मुझे भूल जाओ। मैं ग़रीब चौकीदार की बेटी हूँ। कुल मिडिल तक पढ़ी हूँ। किसी

गरीब के ही यहाँ मेरा गुज़र होगा। तुम ज़मींदार के बेटे हो, मेरे लिये दो कोस से चलकर न आया करो।"

लोचन ने आँसू-भरी आँखों से उसकी ओर देखा था, और तब चंपा उसके सिर पर हाथ फेरने लगी थी। फिर उसने कहा था—"मैं तो तुम्हारे परिवार, तुम्हारे भविष्य और तुम्हारे अच्छे के ही लिये यह सब कह रही थी। वैसे क्या तुम्हें पाए बिना मुझे सुख मिल सकेगा?" और, इस समय खिड़की के पास खड़े-खड़े लोचन ये ही सब पुरानी बातें सोच रहा है।

नरकुल की झाड़ियों में बहुत-से सियार एक साथ बोल उठे थे, और कुत्तों के ज़ोर से भूँकने की आवाज़ आ रही थी। एक चमगीदड़ लोचन के पास से पर फड़फड़ाता हुआ निकल गया, और उसका ध्यान टूट गया। उसने देखा कि चंपा ने करवट बदली है। तभी वह कुछ ऊँची आवाज़ में बोला—"चंपा!"

और चंपा झट से चौंककर उठ बैठी। लोचन ने मुस्कराकर कहा—"देखो, मैं कब से तुम्हारी राह देख रहा हूँ।"

चंपा झटपट उठकर खिड़की के पास आई, और ताज्जुब से लोचन की ओर देखते हुए कहा—"अरे, तुम इतनी रात गए यहाँ कैसे आए? क्या बात है?"

लोचन ने खिड़की के सीकचों के अंदर हाथ डाल दिए, और चंपा के हाथों को अपने हाथों में लेते हुए कहा—"मैं बड़ी देर

से यहाँ खड़ा-खड़ा तुम्हें पुकार रहा था, पर तुम जाग ही नहीं रही थीं।"

"इतनी सर्दी में कैसे आए? कहीं बाबा इधर आ गए, तो क्या होगा?"

"तुमसे मिलने चला आया। कई दिनों से देख नहीं पाया था, जी नहीं माना। बाहर आओ ज़रा।"

"बाहर तो नहीं आऊँगी। इतनी रात गए कोई देख लेगा, तो मुँह दिखाना मुश्किल हो जायगा। बाबा कहीं इधर आ निकले, तो क्या होगा?"

"आओ भी, बाबा तो ज़मींदार की कोठी की तरफ़ बोल रहे हैं।"

"मैं बाहर नहीं आऊँगी। तुम वहीं से कहो।"

"क्यों, मुझसे डरती हो क्या?"

"तुमसे नहीं डरती, परमात्मा और आदमी के बनाए नियमों से डरती हूँ। मैं बाहर नहीं आऊँगी। तुम कहते क्यों नहीं; क्या बात है?"

"अच्छा, नहीं आतीं, तो न सही। मैं यह कहने को आया था कि मेरे माता-पिता ने मेरे लिये शहर में एक लड़की पसंद की है, लेकिन मैं उससे शादी करना नहीं चाहता। मैंने साफ़ कह दिया है कि मैं तो तुम्हीं से शादी करूँगा।"

"जब माता-पिता नहीं चाहते, तो यह कैसे हो सकता है?

मैं तो कहती हूँ, जहाँ तुम्हारे माता-पिता कहते हैं, वहीं शादी करो।"

"यह नहीं होगा चंपा! तुम पंचमी की रात को यहाँ मिलो, और मेरे साथ कहीं भाग चलो।"

लोचन की बात सुनकर चंपा ने झटके के साथ अपना हाथ उसके हाथों से छुड़ा लिया, और कड़ककर कहा—"तुम समझते हो कि हम ग़रीब हैं, तो हमारी इज़्ज़त नहीं है। मैं तुम्हारी रखैल बनना नहीं चाहती! मैंने भी सात किताबें पढ़ी हैं। मेरे दिल में भी अरमान है। मैं चाहती हूँ, किसी की कुल-वधू बनूँ, चाहे वह ग़रीब हो, चाहे अमीर।"

"चंपा!" लोचन ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा।

"मुझे अपनाना चाहो, तो अपने पिता को मेरी गोद भरने के लिये भेजो, और ब्याह करने के लिये इस झोपड़ी के द्वार पर बरात लाओ, वर्ना चंपा तुम्हारी न हो सकेगी।"

"चंपा!"

"मैं और कुछ भी नहीं चाहती। बाबा ने रातों जाग-जागकर मुझे मतलबी दुनिया के रहस्य बताए हैं, और मैंने उन्हें समझा है। एक दिन मैंने तुम्हें पाया था, आज खो रही हूँ। जाओ। लोचन, तुम यहाँ से चले जाओ। तुमने जो कुछ कहा, उसे सुनने से पहले ही मेरे कान क्यों न फूट गए!"

"बुज़दिल!"

लोचन आगे कुछ कहना ही चाहता था कि थोड़ी ही दूर चौकीदार की आवाज सुनई पड़ी—"जागते रहो।"

लोचन ने समझा, काका इधर ही आ रहे हैं। चंपा ने खिड़की बंद कर ली, और लोचन चला गया।

नरकुल के झुरमुट में सियार अब भी बोल रहे थे, और कुत्तों के भूँकने की तेज आवाज आ रही थी। नीम के पेड़ पर उल्लू का जोड़ा डरावनी आवाज में बोल रहा था, और इमली के पेड़ पर लटके हुए चमगीदड़ों ने पर फड़फड़ाना फिर शुरू कर दिया था। कुहरा साफ हो गया था, लेकिन सर्द हवा चल रही थी, और अँधेरे आसमान के नीचे लंबे-लंबे क़दम रखता हुआ लोचन स्टेशन की ओर चला जा रहा था।

चंपा की कोठरी का दिया बुझ गया था, और वह सिसक-सिसककर रो रही थी!

पास ही "जागत रहियो" की पुकार सुनाई पड़ रही थी।

भावी कलाकार

अनंत वैभव और असीम लाड़-प्यार में पलनेवाला अनु घर में सबसे छोटा था। शैशव का भोलापन उसकी सुंदरता पर छाया किए था, और बिखरा हुआ था उसके चारों ओर माता-पिता, भाई और पाँच बड़ी बहनों का प्यार-दुलार। यह तो मैं नहीं जानता कि वह इस घनी ममता को कहाँ तक समझता होगा, लेकिन उस नादान शिशु की गति-विधि लक्ष्य करने पर इतना सरलता से समझा जा सकता है कि वह घर के सभी प्राणियों से भिन्न प्रकृति का है, और उसे देखने पर यह अनुमान लगाना और भी सरल हो जाता है कि बड़ा होने पर वह अपने मजिस्ट्रेट पिता की गंभीरता, विदुषी मा की दया, कवयित्री बहनों की भावुकता और भाई की निर्भीकता, सभी कुछ, एक साथ प्राप्त करेगा।

जोधपुर से बाडमेर तक का सफ़र दस-ग्यारह घंटे में पूरा होता है। बाडमेर जोधपुर-राज्य का सबसे बड़ा इलाक़ा है, जिसमें पाँच सौ ग्राम हैं, और अनु है इन पाँच सौ ग्रामों के हाकिम का पुत्र।

जब गाड़ी बाडमेर-स्टेशन पर रुकी, दो बज चुके थे, और लंबी-चौड़ी बियाबान रेगिस्तानी भूमि के बीच बड़े-बड़े रेतीले

टीलों से घिरा हुआ गाँव सुनसान सन्नाटे में सोया हुआ था। पहाड़ी चोटियों से पहरेदारों की "आ होऽऽऽ" आवाज उठती-गिरती उड़ी जा रही थी। कँकरीला, पथरीला और ऊबड़-खाबड़ रास्ता, जिसके दोनो ओर नीम, इमली और कैथ के घने पेड़ धुँधली रेत के बवंडरों के उस पार चमकनेवाले पीले चाँद की रोशनी में भयानक लग रहे थे। पेड़ों पर लटकते हुए चमगीदड़ों का पर फड़फड़ाना और शोर मचाना पहरेदार की पहाड़ियों से टकरानेवाली भारी आवाज में मिलकर डरा देता था।

हम लोग घर पहुँचे, तो बउआ के पास सोता हुआ अनु भी जाग पड़ा, और खाट पर ही पलथी लगाकर बैठ गया। मेरे पास उसके जो फ़ोटो थे, उनसे कहीं ज्यादा सुंदर वह मुझे लगा। अनु की बड़ी बहन रतन ने उससे मेरा परिचय कराते हुए कहा—"देख मेरी अनुई, ये बिजेन भाई छाब हैं।"

अनु ने मेरी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा, और मुँह फिराते हुए कहा—"ये मेरे बिजेन भाई छाब नहीं हैं। वो तो बहुत अच्छे हैं। लखनऊ छे खलबूजे भी मेले लिये भेजते हैं। और ये तो काला कोत पहने हैं, ये अच्छे नईं हैं।"

अनु की बात सुनकर सब हँस पड़े, और एक क़हक़हे से सारा मकान गूँज उठा। मैं तो झेंप गया, क्योंकि जिस अनु को मैं बहुत दिनों से जी भरकर प्यार करने की सोच रहा था, उसी ने मेरा तिरस्कार किया, क्योंकि मैं काला कोट पहने था;

और फ़सल न होने के कारण उसके लिये खरबूज़े न ले जा सका था।

रेल की थकान मिटाने के लिये जब हम लोग सोने को तैयार हुए, और अनु मा के साथ ऊपर चला गया, तब भी बहुत देर तक उसी के संबंध में बातें होती रहीं, और जब सुबह की सफ़ेदी आसमान पर फैलने लगी, और मा ने ऊपर से डाटना शुरू किया, तब हम लोग सो गए।

अनु पर अपनी बहनों के लाड़-प्यार का इतना गहरा प्रभाव पड़ा है कि वह कहने लगता है—"मैं ललका नईं, ललकी हूँ। ललके बुले होते हैं, ललकियाँ अच्छी होती हैं।"

मैं अनु को देखकर रह जाता था, क्योंकि पहली बार उसने मुझे जिस दृष्टि से देखा था, उसके कारण वह मुझसे हेल-मेल बढ़ाना अच्छा नहीं समझता था। एक दिन मैंने रतन से कहा कि वह किसी तरह अनु को मेरी गोद में आने के लिये राज़ी कर ले। और, जब अनु हँस-खेल रहा था, रतन ने उससे कहा—"देख, मेली अच्छी-छी अनुई, बिजेन भाई छाब की गोद में आ जा।" तब मेरी ओर विरक्ति से देख, झपटकर जाते हुए वह बोला—"मैं नहीं जाती। ये बिजेन भाई छाब नईं हैं। ये बुले हैं। मेले बिजेन भाई छाब तो लखनऊ में लहते हैं।" और हम लोग फिर हँसकर रह गए। चूँकि अनु मा से भी अधिक रतन को चाहता है, इसलिये

1249

मैंने सोचा था कि वह मेरे पास आएगा, तो रतन के कहने से ही, अन्यथा नहीं आएगा। पर वह तो न मा के कहने से मेरे पास आया और न रतन के कहने से। और, मैं लालसा-भरी दृष्टि से उसे देखता रह जाता।

मैं बच्चों को बहुत प्यार करता हूँ, और सोचता था कि सभी बच्चे मुझसे हिल-मिल जायँगे, पर अनु की अपने प्रति घोर विरक्ति देख मैं आश्चर्य में पड़ गया।

एक दिन ज़मीन पर ढेर सारे खिलौने फैलाए वह खेल रहा था, और धीरे-धीरे गुनगुनाता जाता था—"छाली दुनिया जाग लही है, जागो हिंदुछतान.... ।" मैं हँसी रोककर उसके पास बैठ गया। वह अपने गाने में मस्त था।

थोड़ी देर बाद मेरी ओर देखकर बोला—"तुम भी खेलो बिजेन भाई छाब। लो, हमने तुम्हें माफ़ी दे दी।" और, अपने पास की सब चीजें उठा-उठाकर उसने मेरे सामने रख दीं। वह माफ़ी को बहुत महत्त्व देता है। जब कोई उससे माफ़ी माँगता है, तो सारा क्रोध भूलकर वह अपने पास की हर चीज़ उसे दे देता है। मुझे उसकी भाव-भंगी देखकर बड़े ज़ोर की हँसी आ गई। अनु ने गुस्से में आकर कहा—"तुम हमाली हँछी उलाते हो। जाओ, हम तुमछे नहीं बोलते। हम तुमको माफ़ी भी नईं देते।"

मैंने हँसी रोककर कहा—"अब नहीं हँसेंगे अनु! आओ, हम-तुम खेलें।"

"जाओ, हम तुम्हाले छाथ नहीं खेलते। हँछी उलाते हो तुम।"

मैं बहुत गंभीर बन गया, और सब खिलौने उसके सामने रखकर दूसरी ओर देखने लगा। कुछ ही देर बाद वह खिलौनों को तरतीब से रखने लगा, और फिर गुनगुनाने लगा—"जागो हिंदुछतान हमाले, जागो-जागो...." जब रतन कोई कविता पढ़ती है, तब वह ध्यान से सुनता रहता है। उसे मेरी कई कविताओं की दो-दो, चार-चार पंक्तियाँ याद थीं, जिन्हें एकांत में या मूड़ आने पर वह अपनी तोतली वाणी में खूब झूम-झूमकर गाता था।

मैंने सोचा, अनु से दोस्ती हो गई, सो झट उसे गोद में उठा लिया। लेकिन गोद में आते ही वह छटपटाने लगा, और रोनी सूरत बना ली। मैंने बिना एक क्षण विलंब किए उसे गोद से उतार दिया, तो वह जमीन पर लोट गया, और पैर पटक-पटककर रोने लगा। मा पूजा-घर में थी, रतन ने आकर उसे गोद में उठा लिया, तो आँसू पोछते हुए कहने लगा—"अम नईं बोलते। बिजेन भाई छाब बुले हैं।"

❀ ❀ ❀

फ़राश की एक तीन वर्षीया बहन थी। उसके माता-पिता मर चुके थे। भाई दिन-भर काम में लगा रहता था, और उसकी देख-भाल करनेवाला कोई न था। वह बहुत गंदी रहती थी। अकेली दिन-भर दरवाज़े के बाहर फैले हुए

रेत के ढेर में पड़ी रहती थी। जब उसे भूख लगती, तो आँगन के एक कोने में आ खड़ी होती, और उसे खाना दे दिया जाता था।

उस दिन दोपहर को मैं रतन के साथ अपने कमरे से निकलकर रसोई-घर की ओर जा रहा था, देखा, बीचवाले कमरे में, स्टूल पर, दोपहर में अनु के पीने का जो दूध गिलास में रक्खा था, उसमें से आधा फैलाकर, गिलास लिए वह बैठी है। हमें देखकर सहम गई। रतन ने करुणा-भरे स्वर में कहा—"बेचारी अनाथ बच्ची!" और अपने हाथ से गिलास उसके मुँह में लगा दिया। वह गटागट सारा दूध पी गई। मुझे इससे बड़ा संतोष हुआ। इतने में अनु ने आकर रतन से कहा—"दीदी, मैंने इछको दूध दिया था, छो फैला क्यों दिया ?"

❀ ❀ ❀

अभी राजेश के स्कूल खुलने में एक सप्ताह की देर थी।

वह इस साल हाईस्कूल की परीक्षा देनेवाला था, इसीलिये स्कूल खुलने से पहले ही पढ़ाई शुरू करने की सोच रहा था। लेकिन हम लोगों की चहल-पहल में उसे भी पढ़ना अच्छा न लगा। और, जब तक मैं रहा, किसी की भी पढ़ाई-लिखाई न हो सकी।

मैं अक्सर पास की पहाड़ियों पर अकेला ही घूमने चला जाता था। उस दिन भी एक पहाड़ी पर बनी झोपड़ी का

'लैंडस्केप' बनाकर दोपहर को वापस आया। उस समय सब लोग मेरे कमरे में बैठे ताश खेल रहे थे। खा-पीकर मैं भी जा बैठा। ब्रिज खेलने के लिये ताश बाँटे गए, और पहली बाज़ी ख़त्म होने से पहले ही पत्ते इसलिये फेंक दिए गए कि फ़र्राश की बहन रोती-चिल्लाती कमरे के द्वार पर आ खड़ी हुई। उसका माथा और चेहरा ख़ून से तर था, और कई घाव भी चमक रहे थे। ख़ून कुरते पर भी बह रहा था। पता चला कि एक लावारिस कुत्ते ने उस अनाथ बालिका पर यह सितम ढाया है।

अनु भी आया, और द्वार पर खड़ा होकर, बाहर की ओर इशारा करते हुए, दाँत पीसकर ज़ोर-ज़ोर से कहने लगा—"देखो, वो जा लहा है कुत्ता। उछी ने काता है। उछको मालो।" मैं जो बाहर आया, तो देखा, कुत्ता एक ओर भागा जा रहा है। उसका पीछा करने से भी क्या होता।

शाम को जब फ़र्राश अपनी बहन के घावों पर अस्पताल से मल्हम-पट्टी करवाकर लौटा, उसके कुछ ही देर बाद अनु हम लोगों के बीच से ग़ायब हो गया। जब बहुत देर तक वह नहीं लौटा, तो घर में उसकी तलाश हुई। मैं अपने कमरे की ओर जा रहा था, रास्ते में फ़र्राश की कोठरी पड़ती थी। उधर झाँककर देखा, तो जाना कि अनु अपने जीवन में दया-वान् अवश्य होगा। कोठरी में एक ओर ज़मीन पर वह लड़की पड़ी थी, जो बदसूरत और गंदी थी, और

उसके पास ही अनु बैठा था, जो सुंदर और साफ था। अनु ने उसके चेहरे और सिर पर बँधी हुई पट्टियों पर हाथ फेरकर कहा—"तुमाले उछने कात लिया है। मैं दादाजी छे कह-कल उछको पितवाऊँगा।" और, दया के आधिक्य से उसके सुंदर चेहरे पर करुणा की रेखाएँ खिंच गईं।

❀ ❀ ❀

अभी स्कूल नहीं खुले थे, लेकिन सब लोग जोधपुर लौट आए थे। और, जिस दिन मुझे जोधपुर से लखनऊ आना था, उससे एक दिन पहले मैंने देखा कि जमीन की ओर बहुत ध्यान से देखते हुए अनु एक ओर जाने का असफल प्रयत्न कर रहा है। मैंने पास आकर देखा, जमीन पर ढेरों चींटियाँ फिर रही हैं, और अनु उनके बीच से निकल जाना चाहता है। मैं जानता हूँ कि अनु उन चींटियों से डर नहीं रहा था, बल्कि यह सोच रहा था कि चींटियाँ उसके पैरों से दबकर मर न जायँ।

जब उसने मुझे देखा, तो दोनों हाथ फैलाकर कहा—"बिजेन भाई छाब, तीतियाँ हैं।" और मैंने प्रसन्न होकर तुरंत उसे गोद में ले लिया।

महीने-भर तक जिसे गोद में लेने की कोशिश करता रहा, वह मेरे जाने से एक दिन पहले ख़ुद-बख़ुद मेरी गोद में आ गया। अपनी इस सफलता पर मैं मन-ही-मन फूला नहीं समा रहा था। मैं उसे गोद में लिए रहा। जब वह उतरने

की चेष्टा करता, तो मैं जमीन की ओर इशारा करके कहता कि चींटियाँ हैं और वह कहता—"तो नई उतालो। लिए लओ भाई छाब।" उस दिन अनु के इस परिवर्तन पर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ।

दूसरे दिन जब मैं चलने लगा, तो अनु आसानी से मेरी गोद में आ गया। और शेरवानी का बटन छू-छूकर कहने लगा—"बजाल छे जल्दी आना भाई छाब। हम-तुम बिछकुत खायँगे।"

और आज मैं अपने उस शिशु मित्र से बहुत दूर हूँ, जिसे देखकर मुझे अपना बीता हुआ मधुर शैशव काल याद आ जाता था। मा ने एक पत्र में लिखा था—"ब्रजेंद्र जी, अनु तुम्हारा सिगरेट का डिब्बा किसी को छूने भी नहीं देता। कहता है, ये डिब्बा मेरे बिजेन भाई छाब, मेले लिये छोल गए हैं। बिजेन भाई छाब मेले हैं, औल किछी के भी नई।"

मेरी आँखों के सामने अनु की तस्वीर है और मुझे ख़याल आ रहा है कि रतन का यह सोचना, कि अनु की भोली भावुकता उसे कलाकार बनाएगी, असंगत नहीं है।

राह के मुलाक़ाती

जगत स्वस्थ है, आकृति भी बुरी नहीं है। उम्र उसकी छत्तीस साल की है, लेकिन 'क्लीन-शेव्ड' चेहरा देखकर यही समझ में आता है कि वह छब्बीस साल का है। बहुत मजेदार आदमी है। और, अगर आपकी जेब में चाय पीने के लिये पैसे हैं, तो वह आपके लिये अच्छा दोस्त साबित हो सकता है। शिक्षित तो शायद नहीं है, लेकिन लिख-पढ़ लेता है, और बात करने का आकर्षक ढंग भी वह जानता है। आदमी शादी-शुदा है। बीबी, सुना है, अच्छी है, दो बच्चे भी हैं। लेकिन हमने किसी को नहीं देखा। उसके जीवन का पिछला इतिहास, जैसा कि वह कहता है, बड़ा अजीबोग़रीब रहा है। उसने छोटी-से-छोटी नौकरियाँ की हैं, और वह सुमात्रा-जावा में भी रह आया है। यहाँ तक कि उसने ग्वालियर में एक मामूली सिपाही का जीवन भी कुछ दिन बिताया है। लेकिन पता नहीं, किस तरह आज वह एक सरकारी दफ़्तर में चालीस रुपए मासिक वेतन पर क्लर्क है।

मेरी घूमने-फिरने की बहुत आदत है— यहाँ तक कि लोग मुझे जमीन नापने का गज कहते हैं। एक-एक गली मेरी छानी हुई पड़ी है, और मैं जिधर भी निकल जाता हूँ, मुझे लगता है

कि प्रत्येक रास्ते का प्रत्येक मकान मेरा परिचित है, और इतना अधिक परिचित है कि उसकी ओर देखने के लिये मन में कोई उत्सुकता शेष नहीं है।

एक दिन इसी तरह चला जा रहा था। अँधेरा हो गया था। रास्ते में एक जगह खड़े होकर सिगरेट जलाने के लिये दियासलाई बाली कि पास से ही आवाज़ आई—"मिस्टर, बुझाइए नहीं।"

मैंने सिगरेट जलाकर जलती हुई तीली आगंतुक की ओर बढ़ा दी। यही जगत था—और यहीं उससे मेरा पहला परिचय हुआ। उस समय जगत बिना क्रीज का पुराना पैंट और ओवरकोट पहने हुए था। सिर पर नाइटकैप थी, और पैरों में पुराने-से जूते। मुँह में आधे पिए हुए सिगार का टुकड़ा लगा हुआ था, उसी को उसने जला लिया, और मेरी ओर देखकर कहा—"धन्यवाद।"

मैंने कहा—"कोई बात नहीं।"

"कहिए, किधर चल रहे हैं?"

"इधर ही" कहकर मैं आगे बढ़ा, तो साथ हो लिया। आध घंटे तक साथ रहा, और इतने में ही उसने दुनिया-भर की बातें बक डालीं। अपना लंबा-चौड़ा परिचय दिया, और मेरा नाम-ठिकाना पूछा। मैं उदासीन-सा रहा, क्योंकि बातूनी लोगों को मैं कभी पसंद नहीं करता।

जगत जब चलने लगा, तो उसका सिगार ख़त्म हो गया

था। जाने से पहले, उसने बेतकल्लुफ़ होकर मुझसे एक सिगरेट भी ले ली, और बड़े जोरों से खुश होकर हाथ मिलाया।

जगत अक्सर मुझे अमीनाबाद-पार्क में या रास्ते में आते-जाते मिल जाता है। घूमने के लिये, फ़ालतू वक़्त में, उससे बात करते या उसके साथ घूमते अब मन उकताता नहीं। उसकी लच्छेदार बातें और बात करते समय का अभिनय बहुत आकर्षक है, यह मैं पहले कह चुका हूँ, लेकिन मुझे उस आकर्षण में कोई दिलचस्पी नहीं है, क्योंकि मेरे पास समय का अभाव है—फिर भी जब वह मिल जाता है, तो मैं अपना पूरा फ़ालतू समय उसे दे देता हूँ।

उस दिन हम लोग पार्क में खड़े रेडियो सुन रहे थे कि एक युवक आया। जगत ने उससे बड़ी जल्दी हाथ मिलाया। फिर मेरी ओर देखकर कहा—"यह मिस्टर श्रीवास्तव हैं। मेरे दोस्त हैं। आप मेरे ही दफ़्तर में तीस रुपए के क्लर्क हैं।"

फिर मेरा परिचय भी उसे दिया। लेकिन वह युवक झेंप गया था। और, जगत की इस बात से मुझे बड़ी घृणा हुई कि उसने उसके अल्पवेतन का जिक्र किया, जिसे सुनकर वह युवक भी क्षुब्ध हुआ। लेकिन जगत जैसे मेरे और इस युवक के अंतर्द्वंद्व को नहीं समझ रहा था। वह पहले तो मुस्कराता रहा, फिर जोर से हँस पड़ा। उसकी इस हँसी ने जहाँ उस

युवक को बुरी तरह लज्जित किया, वहाँ मुझे भी जगत के प्रति क्रोधित किया।

जगत की जेब में मैंने कभी भी पैसों की खनखनाहट नहीं सुनी। लेकिन वह अपने पुराने कपड़ों को इस शान और रोब से पहनता था कि लोग समझें कि कोई बेकार ग्रेजुएट है। उसे दिखावा बहुत ज्यादा पसंद है। वह कुछ न होते हुए भी अपने को बहुत वजनदार व्यक्त करने का प्रयत्न करता है, और मुझे इन बातों से घृणा है। मैं न तो दिखावा पसंद करता हूँ, और न ऊपर उठकर चलना ही। हम दोनो के विचार एक दूसरे से क़तई मेल नहीं खाते, फिर भी हम लोग जब मिलते हैं, तो एक दूसरे से बातें अवश्य करते हैं, चाहे उन बातों में उत्सुकता रत्ती-भर भी न हो। मैंने हमेशा यह महसूस किया है कि जगत जो बातें मुझसे कहता है, वे बातें उसे कंठस्थ हैं, उन्हें उसने बहुत बार और बहुत लोगों से कहा होगा। लेकिन उन बे-सिर-पैर की बातों से मेरा कोई लाभ नहीं, न उन बातों में कहीं कोई तथ्य ही होता है। हाँ, वह जरूर बातें करते-करते हँस पड़ता और मैं देखता हूँ कि इस तरह वह मेरा मनोरंजन भी करने की कोशिश करता है, लेकिन उसकी बातें मेरा मनोरंजन नहीं कर पातीं। यह जरूर है कि मेरा घूमने का समय, जब वह मिल जाता है, तो बड़ी जल्दी कट जाता है, और मुझे बुरा भी नहीं मालूम होता।

श्रीवास्तव चला गया, तो मैं और जगत पार्क से निकले। उस समय मेरा ध्यान गया कि उसके हाथ में एक बहुत मशहूर और अधिक दामों में आनेवाली सिगरेट का टिन है, और उसके ऊपर गेटिस से दबी हुई माचिस की डिबिया लगी है। मैंने उससे सिगरेट माँगी, तो बड़े इत्मीनान के साथ टिन का ढक्कन खोलकर उसने मेरी आँखों के सामने कर दिया, देखा कि डिब्बा एकदम ख़ाली है। मुझे हँसी आ गई, फिर पूछा कि ख़ाली डिब्बा क्यों लिए फिरते हो, तो वह बोला—"सब रंग है! लोग देखें तो, कुछ समझें तो।" और हँस पड़ा।

मैं कुछ न बोला। उसके प्रत्येक शब्द में, प्रत्येक भाव में और प्रत्येक व्यवहार में मुझे दिखावा और बनावट उभरी हुई मालूम होती थी।

फ़ेल्ट हैट का सिरा आँखों पर तिरछा घुमाकर बड़े अदब से उसने कहा—"इधर से चलिए।"

मैंने पूछा—"क्यों ?"

"यों ही।"

"फिर भी आख़िर क्या बात है ?"

"कुछ नहीं भाई! उधर कपड़ेवाले के मुझ पर चालीस रुपए चाहिए—सो उधर से जाना बंद कर दिया है।"

"अच्छा! कोई बात नहीं, मैं इधर से ही चलता हूँ।" और, मैं दूसरी सड़क से होकर निकल उसके साथ ही चला आया।

पंद्रह दिन बीत गए, लेकिन जगत नहीं दिखलाई पड़ा, और तब मुझे उसके प्रति हलकी-सी उत्सुकता का अनुभव हुआ।

एक दिन की बात है कि श्रीवास्तव तेज़ी से साइकिल पर चला जा रहा था कि मुझे देखकर रुक गया।

उसके अभिवादन का उत्तर न देकर मैंने पूछा कि आजकल जगत का क्या हाल है कि दिखलाई नहीं देता? उसने कहा—"जगत की बीबी बहुत सख्त बीमार है, और उसकी नौकरी भी छूट गई है। कल वह मेरे घर रुपए लेने के लिये आया था—आज रुपयों का प्रबंध करके उसे देना है।"

मेरे पास रुपए तो थे नहीं, फिर भी पूछा—"क्या अभी तक रुपयों का प्रबंध हुआ नहीं?"

उसने कहा—"मैं अभी अपनी अँगूठी बेचकर आ रहा हूँ। बीस रुपए उसे दे दूँगा, तब तक उसका काम चलेगा।"

मैंने कहा—"मैं भी तुम्हारे साथ उसके घर चलना चाहता हूँ।"

उसने कहा—"घर तो मुझे नहीं मालूम। उसने मुझसे रकाबगंज के पुल पर मिलने को कहा है। अभी साढ़े पाँच बजा है, आप चाहें, तो सात बजे वहीं आ जायँ। मैं भी चलूँगा और आप भी चले चलेंगे। कहता था कि तबीयत ज्यादा ख़राब है।"

कुछ इधर-उधर की बातें करके वह चला गया, लेकिन शाम को सात बजे रकाबगंज जाने की मुझे याद नहीं रही। जब

याद आई, तो नौ बज चुके थे। मुझे ख़याल आया कि जिस श्रीवास्तव का जगत मज़ाक़ उड़ाता था कि उसे तीस रुपए मिलते हैं, उसी श्रीवास्तव ने ज़रूरत के समय उसकी मदद की, और ऐसी हालत में जब कि वह जगत के बारे में कुछ अधिक नहीं जानता था—दफ़्तर का साथ था और रास्ते की मुलाक़ात, बस !

जब मैं बीस दिन बाद बनारस से लौटकर आया, तो जगत की पत्नी के स्वास्थ्य के बारे में जानने के लिये श्रीवास्तव के ऑफ़िस गया।

श्रीवास्तव ने कहा—"उस दिन बस, वह रुपए लेकर चला गया था। फिर आठ-दस दिन बाद बंबई से उसका पत्र आया। कोई ख़ास बात नहीं लिखी, यहाँ तक कि पता भी नहीं लिखा।"

मैंने कहा—"अजीब आदमी था।"

श्रीवास्तव ने जोश में आकर कहा—"बेईमान था पट्ठा। अरे, मुझसे बीस रुपए ले लिए, यों ही और परिचितों से भी ले लिए होंगे। आप बताइए, मैंने उसकी ज़रूरत समझकर अपनी अँगूठी उसके लिये बेच दी, पर उसे कुछ परवा नहीं।"

मुझे राह के उस मुलाक़ाती की अब याद आती है, तो अपनी स्मरण-शक्ति पर घृणा होने लगती है। जगत और श्रीवास्तव मेरे दो परिचितों में कितना अंतर था, यह मैं अब जान सका हूँ—पर अब वे दोनों मुझसे दूर हैं, क्योंकि लखनऊ मैंने छोड़ दिया है।

अकेला

शाम का समय बिताने की समस्या अब निरंजन के सामने आ पड़ी है। पहले तो यह था कि घंटे-आध घंटे इधर-उधर घूम-फिर आया, और घर आकर लिखता-पढ़ता रहा। लेकिन इधर कुछ दिन से ऐसा कुछ कार्य-क्रम आप-से-आप बन गया है कि दस बजे से पहले घर लौटना जँचता ही नहीं। कॉलेज और युनिवर्सिटी के विद्यार्थी पहले भी उसके परिचित थे, लेकिन मिले तो राम राम, नहीं तो कुछ ग़म नहीं। जब से इनसे घनिष्ठता-सी हो गई है, इनके साथ उठना-बैठना शुरू हो गया है, तब से निरंजन अपने आपमें, अपने कार्य-क्रम में काफ़ी परिवर्तन देख रहा है। लगता है कि जैसे बदलता जा रहा है।

काफ़ी-हाउस में ऐंग्लो-इंडियन लड़कियों के बीच बैठना, कॉलेज की लड़कियों से परिचित हो जाना और उच्छृंखल युवकों की सोहबत के कारण उसे लगता है कि जो वह आज है, वह न रहेगा, और इसके अर्थ होंगे उसकी आत्मा का हनन। आज वह अपने को इतना पवित्र, इतना उच्च समझता है, वह सब कुछ न रहेगा, पतन हो जायगा। फिर सोचता है कि पतन क्यों होगा भला; आदमी गंगा नहाने जाता है,

जी भरके नहाता है, गंगाजल की महत्ता का अनुभव करता है। सोसायटी नाम की निराली दुनिया उसके सामने है, देखने-सुनने और समझने में वह सुंदर-शिक्षित और व्यवहार-कुशल है, सोसायटी में रहकर भी उसके नियमों से कैसे अलग रहें। पता नहीं, जीवन की धारा भविष्य में किस राह को पकड़े, इसलिये लगे हाथ क्यों न इस जीवन का अनुभव भी कर लें।

जवानी के दिनों में आदमी अपने हृदय में उत्साह, उमंग और हर चीज के विषय में जानने-समझने की लालसा रखता है। निरंजन युवक है, साहस उसके हृदय में है। दुनिया के हर पहलू पर विचार करने और मनन करने की उत्सुकता को वह दबा नहीं सकता, और जानना चाहता है कि कौन कैसा है, क्या है और कहाँ कितने पानी में। चाहे यह सब जानने-समझने में बहुत कुछ खो भले ही दे, पर उसका अनुमान है कि जो कुछ वह खो देगा, उससे अधिक पाएगा भी।

❀ ❀ ❀

थोड़े ही अरसे में उसने जाना कि सोसायटी नाम की दुनिया पैसों से चलती है; पैसों से नहीं, रुपयों से, चाँदी-सोने के टुकड़ों से। चाँदी के सिक्के बिना तो वहाँ सिगरेट और पान को छोड़ पानी की भी आशा न करनी चाहिए। काफ़ी-हाउस में जाय, तो जेब में कम-से-कम दस का एक

कागज़ हो, सिनेमा जाने का इरादा हो, तो बीस-पच्चीस रुपए हों। साथ में कोई युवती मिल गई, तो सौ से कम में बात भी नहीं होगी। लेकिन इस रक़म को ख़र्च करने पर ज़िंदगी का जो दूसरा पहलू दिखाई देता है, उससे बहुत-से लोग वंचित रहते हैं। बल्कि अधिकांश लोगों के [illegible] तो वह सब स्वप्न के समान है कि कभी अनुमान कर लिया, कल्पना कर ली, किताबों में पढ़कर सोचते रहे, सिनेमा में देख आए, और मन मसोसकर रह गए कि इतना पैसा न हुआ, व्यक्तित्व न हुआ, ज्ञान न हुआ कि हम भी कुछ देखते। हज़ारों लोग ऐसे भी हैं, जो शिक्षित, संपन्न और प्रभावशाली व्यक्ति को अपना ग़ुलाम समझते हैं, लेकिन इस दुनिया से, इस दुनिया की रंगीनियों से दूर रहते हैं, पास फटकना नहीं चाहते, या फटक नहीं सकते, शायद इसलिये कि उनके दिल में उमंग नहीं है, उत्साह, साहस और लालसा नहीं है।

सोच-समझकर, कुछ खोकर, कुछ पाकर और सीखकर निरंजन जैसे इस दुनिया से बाहर आया है, तो सोचता है कि अपनी दुनिया अलग बसा ले, निराली दुनिया, नई दुनिया, जिसमें और किसी का साझा न हो, और कोई भागीदार बनने के लिये सामने खड़ा न दिखाई पड़े। जो गँवाए, वह ख़ुद ही गँवाए, और उसके बदले में जो कुछ मिले, वह सब उसी को मिले। सोसायटी में पड़कर कम ही लोग ऐसे होते

हैं, जो अकेलेपन की खोज में खो जाते हैं। वहाँ तो लोगों का आधिपत्य होता है, जो खो जानेवाले की जेब को काट सकें, लेकिन निरंजन को बिना किसी के समझाए, सोसायटी के विरुद्ध विद्वेष न रखते हुए एकांत की खोज का चस्का लग गया। लेकिन वह ऐसे एकांत को नहीं चाहता, जहाँ कोई न हो, साधुओं और महात्माओं की तरह निर्जन वन कानन में जाने की इच्छा उसे तनिक भी नहीं है। वह चाहता है कि उसे ऐसा एकांत मिले, जिसमें कोई कामिनी उसके सर को गोद में रखकर सहलाए, दूर से संगीत की स्वर-लहरियाँ आती हों, और कोई अन्य व्यक्ति, दोस्ती का दम भरते हुए, वहाँ आकर यह न कहे कि भई, हमारा भी हिस्सा है........

❀ ❀ ❀

सिनेमा-हॉल से निकलकर निरंजन सोडा-लैमन के स्टाल पर जा खड़ा हुआ। इंटरवल होने में देर थी। गेटकीपर से आउट पास भी नहीं लिया था। लैमन का गिलास ओठों से लगाया, तो पीछे सुना कि सेकिंड और थर्ड क्लास के गेटकीपर्स आपस में बातें कर रहे हैं।

एक ने कहा—"यह जो बाबू खड़े हैं, यह तो रोज सिनेमा देखते हैं।"

"इसीलिये गेटपास नहीं दिया।"

"कोई है नहीं इनके क्या? जब देखो, सिनेमा में ही घुसे रहते हैं।"

"एक दिन पूछा था, सब हैं। पर बहुत मस्त तबियत पाई है। खेल के दो-चार गाने पसंद हैं, सुनने को चले आते हैं। कभी बीच में ही चले जाते हैं।"

"बहुत अमीर हैं क्या ?"

"पैसों से चाहे उतने अमीर न हों, पर दिल के बहुत अमीर मालूम होते हैं। कभी दस आने में आते हैं, कभी सवा रुपए में, कभी ढाई रुपए में।"

"अमीर मालूम होते हैं।"

"हाँ, तीस-चालीस तो सिनेमा पर ही ख़र्च करते हैं, फिर दो डिब्बी सिगरेट फूँक देते हैं। क़रीब सौ रुपए महीने तो अपने ऊपर ही ख़र्च कर देते होंगे।"

"कुछ हो, अभी जवान हैं, ख़ुदा की दुआ से ख़ूबसूरत भी हैं। इस तरह की आदतें कुछ अच्छी नहीं मालूम होतीं।"

"भई, ये तो मन की बात है, लोग शराब में उड़ा देते हैं, रंडीबाज़ी में मिट जाते हैं, इन्हें सिनेमा का ही शौक़ है।"

"क्या बड़े कॉलेज में पढ़ते हैं ?"

"यह तो नहीं मालूम, पर पढ़ते ही होंगे शायद।"

निरंजन मुस्करा दिया, ख़ाली गिलास वेटर के हाथ में थमाया, पैसे चुकाए, हॉल के अंदर घुस गया। थोड़ी देर बाद निकला और चला गया। गेटकीपर जाने कैसे भाव से उसकी ओर देखता रहा।

* * *

निरंजन ने सिगरेट का धुआँ छोड़ते हुए रंजना की ओर देखा। रंजना मुस्कराते हुए बोली—"आँखें बड़ी लाल हो रही हैं, क्या सो के चले आ रहे हो ?"

"नहीं, सोया तो नहीं था। तुम्हारे पास होने की बात सुनी, तो चला आया कि बधाई दे आऊँ। अब तो तुम ग्रेजुएट हो गई हो, मैं तो तुमसे कम पढ़ा हूँ।"

"इससे क्या होता है, पर तुम्हारी आँखें बड़ी सुर्ख हैं, धूप में से आए हो, मैं अभी तुम्हारे लिये शर्बत बनवाती हूँ।"

"वाह, सात बजा है, यह भी शर्बत का कोई वक़्त है। पास हुई हो, आज तो कुछ इनाम मिलना चाहिए।"

"क्या इनाम दूँ। क़ायदे से तो आपको ही इनाम देना चाहिए।"

"वाह, पास तो तुम हुई हो, और इनाम मैं दूँ।"

"इनाम माँगने की प्रथा होती, तो मैं आपकी बात का जवाब ज़रूर देती।"

"तो फिर चलो, तस्वीर देख आएँ।"

"अब सात बजे ?"

"क्या हुआ, साढ़े सात से फ़िल्म शुरू होती है। आज-कल अच्छी फ़िल्में चल रही हैं।"

रंजना ने पिता से पूछा, और दोनों सिनेमा जाने के लिये तैयार हो गए।

निरंजन ने कहा—"इस बार मसूरी नहीं जा रही हो क्या ?"

"अकेले क्या करूँ जाकर, कोई साथी हो, तो बात भी है। पहाड़ पर बिना साथी के मज़ा नहीं आता।"

"साथी कितने दिन के लिये चाहिए ?"

"अब तो मैं जीवन-साथी की खोज में हूँ।"

"बहुत मिल जायँगे।"

रंजना उदास-सी हो गई, फिर कुछ न कहा।

"तुम्हें सोने से बहुत प्रेम है, हार भी पहने हो, बुंदे, अँगूठियाँ, चूड़ियाँ,....मुझे सोने से नफ़रत है।"

रंजना फिर कुछ न बोली।

सिनेमा-हॉल में जब निरंजन रंजना के बग़ल में बैठा, और उसका मुँह रंजना के बिलकुल पास आ गया, तो उसने बहुत ध्यान से निरंजन की ओर देखकर मुँह फेर लिया। निरंजन उसके और पास हो लिया। हॉल में अँधेरा हुआ। लड़ाई की फ़िल्म शुरू हुई। निरंजन ने अपना हाथ रंजना के बग़ल में कर लिया।

रंजना उठी, निरंजन भी उठ खड़ा हुआ। रंजना के पीछे-पीछे हॉल से बाहर आया।

"क्यों, तस्वीर नहीं देखोगी क्या ?"

"नहीं, मेरी तबीयत ठीक नहीं है।"

"तो फिर चलो, कहीं पार्क-आर्क में घूम आएँ।"

"नहीं, मुझे घर पहुँचा दो। मैं तुम्हारे साथ कहीं न जाऊँगी।"

"क्या हुआ....?"

"तुम शराब पीते हो, मैं तुम्हें ऐसा नहीं समझती थी।"

"शराब मैं पीता हूँ, किसी का कुछ जाता हो, तो बचा ले। तुम्हें क्यों जलन होती है।"

"मुझे जलन नहीं, तुम्हारी बुद्धि पर रहम आता है।"

"मैं अपने पर रहम करनेवालों से नफरत करता हूँ।"

निरंजन की ओर रंजना देखकर रह गई। कहा—"मुझे घर पहुँचा दो।"

निरंजन ने एक रुपए का नोट उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"ताँगा करो और चली जाओ। मैंने कहा कि मेरे ऊपर रहम करनेवाले मेरे शत्रु हैं। मैं तुम्हें नापसंद करता हूँ।"

रंजना चुपचाप एक ओर चली गई। निरंजन ने रुपया अपनी जेब में रख लिया, और दूसरी ओर चल दिया। वह अभिमान के साथ सोच रहा था कि सिनेमा देखता है, तो गेटकीपर का क्या लेता है, और शराब पीता है, तो रंजना का क्या जाता है, रंजना-जैसी बहुत युवतियाँ मिलेंगी। कोई क्यों उसकी ओर ध्यान दे, क्यों कोई उसमें दिलचस्पी ले। दुनिया बहुत बड़ी है, लोगों के लिये बहुत-सी समस्याएँ पड़ी

हैं, जिन्हें वे सुलझाएँ, उसी से किसी को क्या मतलब है! किसी के यहाँ चोरी तो करता नहीं। शराब पीना बुरा नहीं समझता, इसलिये पीता है। जब तक इच्छा होगी, पिएगा; इच्छा न रहेगी, छोड़ देगा।

❀ ❀ ❀

निरंजन ने चौक के एक-एक कोठे की हवा खाई है। हर तवायफ़ को वह जानता है। चार-छ मास में ही यहाँ काफ़ी प्रसिद्ध हो गया है। पुराने परिचित उससे घृणा करते हैं। नए परिचित ऐसे, जो पैसे के लिये हाथ फैलाते हैं, चापलूसी करते हैं, और तारीफ़ों के पुल बाँध देते हैं, समाज में जिनका कोई स्थान नहीं है, पर निरंजन सोचता है कि इस सबसे उसे क्या? समाज जिन कामों को बुरा कहे, वे ही काम वह करेगा, क्यों? सो उसे नहीं मालूम।

मुनीर ने कहा, चूड़ियाँ पहनेगी, पहना दीं। कहा, साड़ी ले दो, ले दी। कहा, हार बनवा दो, तो निरंजन ने उसकी ओर घृणा से देखकर कहा कि सोने से उसे नफ़रत है। मुनीर न तो उसकी रखेल थी न लौंडी, तपाक से जवाब दे दिया—"चले हैं तमाशबीनी करने, और जेब में टके भी नहीं हैं।"

निरंजन ने अभी-अभी बोतल खोली थी, शराब का घूँट मुँह में था, मुनीर की बात सुनी, तो मुँह पर कुल्ली कर दी शराब की। उसने कुछ न कहा, चुपचाप मुँह पोंछकर

फेर लिया। निरंजन उठ खड़ा हुआ, बोला—"तमाशबीन रुपए खर्च करते हैं, और रंडी उनके लिये जूती से भी गई-बीती है।"

बात बढ़ने लगी थी, शराब के दो ही घूँट गले से नीचे उतरे थे, इसलिये विवेक अभी था। रंडी के यहाँ की बात, सौ गुंडे उसके साथी होते हैं, किसी ने आकर गले पर ब्लेड फेर दिया, तो किसी को पता भी न चलेगा कि कौन निरंजन था, कहाँ था, कैसे था, और कैसे उसका अंत हुआ, और वह चुपचाप मुनीर के कोठे से उतर आया।

बाल बिखरे हुए थे, जेब में पाँच-सात रुपए पड़े हुए थे, रेस्टोरेन्ट में जा बैठा। इस साल-भर का हिसाब लगाकर देखा, तो लगा कि निरंजन जो था, वह मर गया है। अब वह निरंजन नहीं है, अनुभव जो थे, अनुभव करने की लालसा जो थी, वह मिट चुकी है। जो पाने की इच्छा थी, वह कुछ पाया नहीं। तर्क ग़लत है कि अपना रुपया खर्च करके चाहे सिनेमा में फूँके, चाहे शराब में बहाए, या वेश्या के कोठे पर जाकर लुटा दे। जीवन में यह सब आवश्यक नहीं है....पाया कुछ नहीं, खो इतना दिया कि जिसकी कल्पना भी न की। यहाँ तक कि अपने आपको भी खो दिया। जिस ओर आँख उठाकर निरंजन ने देखा, उसी ओर उसे क़र्ज़दार दिखाई पड़े। भला, इसमें क्या

मिला। अनुभव जो हुआ है, उसका भी क्या करे। लेखक होता, तो ये अनुभव काम में भी आते।

वेटर ने आकर पूछा कि क्या लाया जाय साहब, तो कह दिया कि कुछ नहीं, और बालों को ऊपर उठाता हुआ रेस्टोरेन्ट के बाहर कोलाहलमय वातावरण में ऐसे खड़ा हो गया, जैसे अकेला है, उसका कहीं कोई नहीं है।

सौदा

जब बोलती फ़िल्मों का युग आया, तो मुझे विवश होकर बंबई को नमस्कार करना पड़ा। मैं अपने एक दोस्त के पास, कलकत्ते, यह आशा लेकर पहुँचा कि शायद वह कहीं किसी काम से लगा दे। लेकिन वहाँ भी मुझे सफलता नहीं मिली, क्योंकि मेरा सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि मैं बोल नहीं सकता। बचपन में किसी स्त्री ने मेरी जीभ देवता पर चढ़ाने के लिये काट ली थी। अपनी वाक्-शक्ति नष्ट होने का यही कारण मुझे मालूम है।

आप लोगों में से बहुत-से मेरा नाम जानते होंगे, और मुझे देखें, तो दो-एक पक्के सिनेमा-प्रेमी पहचान भी लें, किंतु इस समय मुझे अपना नाम बताने की आवश्यकता नहीं।

कुछ साल कलकत्ते में ही छोटा-मोटा काम करके पेट पालता रहा। एक दिन चौरंघी के पास किसी ने मेरे कंधे पर हाथ रखकर अपनी मित्रता पेश कर दी, और मैं, परिस्थितियों से लाचार होकर, उसके साथ चला गया। सोना-गाछी 'की एक गंदी गली में उसका मकान था, और वह बाहर से आए हुए पंजाबियों या युक्तप्रांतियों को युवतियाँ सप्लाई करता था।

मैं अभिनेता रह चुका था, और फ़िल्मी दुनिया की उस दूषित ज़िंदगी में मुझे लगातार कई साल साँसें लेनी पड़ी थीं, जिसकी वायु में पाप की बदबू उड़ा करती थी, इसलिये अपने नए शुभचिंतक के निवास-स्थान और व्यापार से ऊब उठने का कोई कारण मुझे न दिखाई पड़ा।

उस व्यक्ति का एक गिरोह था, जिसमें पंद्रह-बीस छँटे हुए लुटेरे, डाकू, चोर, गिरहकट और लफंगे थे। शराब उस गंदे मकान के कण-कण को तर रखती थी, और युवतियों का यौवन वहाँ बे-नक़ाब होकर अँगड़ाई लेता था। कुछ स्त्रियाँ भी थीं, जो दुखी युवतियों को बहकाकर वहाँ लाती थीं, और उनका जीवन नष्ट किया करती थीं।

फ़िल्मी दुनिया की अंदरूनी ज़िंदगी से वह ज़िंदगी कम बीभत्स न थी, और ऐसे जीवन का आदी होने पर भी मुझे यहाँ ऊब होती थी।

अपने शुभचिंतक से मेरी बातचीत पेन्सिल-काग़ज़ के माध्यम से होती थी, और इसी तरह मैंने उसे बताया था कि मैं अभिनेता रह चुका हूँ।

मूक-चित्रों की ही तरह मूक होने पर भी मैं अभिनेता तो रह ही चुका था, और हाव-भाव-प्रदर्शन करने में पटु था। शायद यही कारण था कि मेरी भावुकता से प्रभावित होकर एक नई बंगाली लड़की मेरे प्रति आकृष्ट हुई। किंतु यहाँ भी क़िस्मत चोट करने से न चूकी, क्योंकि वह केवल बँगला

लिखना-पढ़ना और बोलना जानती थी, और मैं बँगला एक शब्द भी नहीं समझता था। अब केवल इशारों से ही बात करने का एक जरिया था, और इस जरिए से हम लोगों ने एक दूसरे को इतना समझा कि एक दिन पाप की उस बदबूदार दुनिया से भाग निकले।

और, आज मैं उस दिन के लिये आँसू बहाता हूँ। मेरा वह भागना ही मेरे लिये आग में कूदना हो गया, जिसकी लपटों ने मेरे भविष्य को जलाकर राख कर दिया। और, मैं जो सोचता कि कभी वह दिन भी आएगा, जब मैं भला आदमी होकर समाज में सम्मिलित हो सकूँगा; ज्ञात नहीं, कहाँ किस दिशा में खो गया।

हम दोनो ने भागकर रंगून जाने का निश्चय किया, और ज्यों ही स्टीमर में सवार हुए कि पुलिस ने हमें आ पकड़ा।

जेल में मुझे पता लगा कि वह लड़की अपने पिता द्वारा इसलिये मेरे उस शुभचिंतक के हाथ बेच दी गई थी कि वह पिता उस लड़की का विवाह करने में असमर्थ था।

जेल से छूटकर आया, तो मेरे साथ एक नया साथी था।

जेल के फाटक पर ही उसने मुझे प्रभावित करने के लिये अपनी कला का प्रदर्शन किया, और जब हम लोग एक रेस्टराँ में पहुँचे, तो उसने बताया कि उस पहरेदार की जेब में सिर्फ एक रुपया और एक दुअन्नी थी, जो कि अब

मेरे इस साथी के हाथ में थी। फिर उसने गर्दन पर अपनी उँगलियों को दबाया और गला फाड़कर मुँह नीचे झुकाया। उसके मुँह से दो गिन्नियाँ निकल पड़ीं, और सुर्ख़ आँखों में पानी भर आया।

पता लगाया, तो ज्ञात हुआ कि मेरे पुराने 'शुभचिंतक औरतों के व्यापार के सिलसिले में दिल्ली को अपना प्रधान कार्यालय बना चुके हैं, और अब वहीं रहते हैं।

गिन्नियोंवाले साथी का नाम संतोष गंगोली था। यह नाम मैं आज इसलिये बता देता हूँ कि गंगोली अब इस संसार में नहीं है।

संतोष गंगोली नाम जानकर पहले तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, किंतु बाद में सोचा कि वह भी कलाकार है, और मेरा आश्चर्य जाता रहा। उसने मुझे बताया कि उन गिन्नियों को वह छ साल तक अपने गले में छिपाए रहा।

अब मुझे उस मुहल्ले का नाम याद नहीं रहा, जहाँ उसने एक कोठरी किराए पर ली थी। अगर तलाश करूँ, तो आज भी उस कोठरी का पता नहीं पा सकता। इतना जानता हूँ कि वहाँ कुछ बहुत ग़रीब लोग, कुछ मजदूर और कुछ सस्ती औरतें कोठरियों में ही रहकर चिमगादड़ों-जैसी जिंदगी बिताती थीं।

जाते समय गंगोली एक छोटी हँडिया में रसगुल्ले रख गया था। कोई ग्यारह बजे जब मैं उस हँडिया को

सामने रखकर रसगुल्ले खा रहा था, गंगोली दस-ग्यारह वर्ष के एक लड़के के साथ आया। वह कुछ सिले-सिलाए कपड़े भी लाया था और ब्लेड का एक पैकेट भी।

कुछ दिन तक गंगोली मुझसे कुछ न बोला। वह और उसके साथ का लड़का ढेरों रुपए लाते और पानी की तरह बहाते—अच्छा खाते, अच्छा पहनते और ख़ूब आराम से रहते।

एक दिन हम लोग भले आदमियों के मुहल्ले में अस्सी रुपए महीने के एक बँगले में रहने के लिये जा पहुँचे, और यहीं आकर मेरे जीवन ने फिर एक पल्टा खाया, और वह यह कि उस लड़के को और गंगोली को अपना गुरु मानकर जेब काटने की कला का अध्ययन करना पड़ा।

इस जीवन में जहाँ मुझे अपने हाथ की सफ़ाई दिखाने का अवसर मिला, वहाँ अभिनय-चातुर्य का प्रदर्शन भी करना पड़ा।

कभी मालिश करने के लिये तेल की शीशी लेकर पार्कों में घूमना पड़ा, कभी नाई बनकर, हजामत की पेटी लटकाकर गलियों में चक्कर लगाए, कभी भिखारी के वेष में फ़ुटपाथों पर गुज़ारा करना पड़ा, कभी बाबू बनकर सिनेमा-हाउसों में लोगों पर नजर और ब्लेड की धार चलानी पड़ी। मैंने बहुत रुपया कमाया और गंगोली की ही तरह ख़र्च करता रहा।

गंगोली के पास बहुत-से व्यक्ति आते थे। एक दिन गंगोली

ने बताया कि वे सब उसके शिष्य हैं, और टैक्स के रूप में अपनी कमाई का कुछ भाग, गुरु-दक्षिणा कहकर, दे जाते हैं।

खर्च करने के तरीक़े पर गंगोली और मेरी बहस एक दिन एक दर्जे को पार कर गई, जब कि मैंने एक बूढ़े को पाँच सौ रुपए इसलिये दे दिए कि वह अपनी लड़की का विवाह कर सके, और गंगोली ने भले आदमी की तरह मुझे अपने यहाँ से सदा के लिये संबंध-विच्छेद करके निकाल बाहर किय॥

यों तो कलकत्ते-जैसी महानगरी में जेब-कतरों के बहुत-से गिरोह थे, किंतु जाफ़र उनमें गंगोली की ही तरह प्रसिद्ध था, और इन दोनों में वैमनस्य की भावना ज़ोर पर थी। इस भावना से लाभ उठाने के लिये जाफ़र के गिरोह में जा मिला।

एक दिन किसी ने आकर बताया कि गंगोली किसी मोटे असामी का पीछा करता हुआ सिंगापुर गया है। उस दिन के बाद से आज तक गंगोली का पता नहीं लगा। शायद उसने वहीं पर अपना काम शुरू किया हो और शायद मर भी गया हो।

यह ज़माना लड़ाई का था। सारी दुनिया में लपटें उठ रही थीं। पूरब में जापानी बढ़े आ रहे थे, और कलकत्ते के सेठ यू० पी०, बंबई, दिल्ली और मारवाड़ की तरफ़ भाग रहे थे।

रुपए की क़ीमत घट गई थी। सभी के पास रुपया था और सभी मज़े की जिंदगी बिता रहे थे, लेकिन कलकत्ते का जीवन संकट में था। लोगों की नींद जाती रही, व्यापार की हालत डाँवाडोल हो रही थी। न-जाने किस क्षण जापानी आ जायँ, यही विचार मस्तिष्क में गूँजता रहता था।

जाफ़र कलकत्ता छोड़कर जा चुका था, और मैं भी जाने की सोच रहा था। गंगोली के साथवाला लड़का जिस दिन गिरफ़्तार हुआ, उसी के दूसरे दिन जापानियों का हवाई हमला कलकत्ते पर हुआ, और एक दिन बाद में हवड़ा-स्टेशन पर, बिना कुछ सामान लिए, जेब में मैं बैंक की किताब डाले पहुँचा। किताब के प्रति मोह कम रह गया था, क्योंकि भविष्य अंधकारमय दिखाई दे रहा था, और समय इतना था नहीं कि बैंक से भुगतान कराने की कोशिश करूँ।

डिब्बे खचाखच भरे थे। मालूम होता था कि मौत से मुर्दे चिपके हुए नरक की ओर जा रहे हैं। दूसरे दर्जे का टिकट लेकर बड़ी मुश्किल से अंदर जा सका। पास में रुपया बहुत कम था, इसलिये इस संकट-काल में भी किसी का जेब हलका करने की इच्छा से डिब्बे में बैठे हुए लोगों पर एक नज़र डाली।

ठीक सामने एक मोटे-ताज़े सेठ नज़र आए। कुर्ता, धोती और अचकन पहने थे, किंतु पैरों में पूरे मोज़े थे, जिन पर मोटी-मोटी गेटिसें बँधी थीं। ऐसे मौक़े कई बार आ चुके

थे, और रुपया आदमी के पास किस जेब में या किस तरफ़ की अंटी में है; यह बात आदमी की नज़र और बातचीत से ही जान लेता था।

सेठ के साथ उनकी पत्नी और एक जवान लड़की थी। डिब्बा खचाखच भरा था। लेकिन सेठ का ध्यान अपने पैरों पर ही था। बातचीत के ढंग से यह तो मैंने जान लिया था कि मोज़ों में ही नोट भरे हुए हैं, लेकिन कितने हैं, यह बात तब मालूम हुई, जब रेल छूटने पर, बाद में आनेवाले मुनीम से सेठजी ने रुपए-पैसे की बात मारवाड़ी-भाषा में की, और जब मैंने सुना कि बाइस हज़ार रुपए के नोट सेठ की पिंडरियों से चिपके हुए मोज़ों की आड़ लेकर मेरे सामने मौजूद हैं, तो मेरी रगों के ख़ून में गर्मी आ गई।

यह जानकर संतोष हुआ कि सेठजी जयपुर जा रहे हैं।

रास्ते-भर सोचता रहा कि सेठ के नोट किस तरह क़ाबू में किए जायँ, सिवा जबर्दस्ती की जाय, और कोई तरकीब समझ में नहीं आई। जाफ़र गया-स्टेशन पर मिल गया, और उसने बताया कि वह भी उसी सेठ के पीछे है। अब हम लोगों में बहस शुरू हुई। यह बहस धीरे-धीरे मनमुटाव और द्वंद्व-युद्ध का रूप धारण करती मालूम हुई, जिसकी रफ़्तार कानपुर आने तक बढ़ती ही गई।

आगरा-स्टेशन पर सब लोग उतर गए। जाफ़र ने मेरे

पास आकर कहा—"बोल, अपना आसामी मेरे हाथ बेचता है ?"

मैं यह तो सोच रहा था कि सेठ का रुपया हथियाना बहुत मुश्किल है। लेकिन कोशिश करना चाहता था। जब जाफ़र की बात सुनी, तो सोचा कि बिना मेहनत किए ही अगर कुछ रुपया मिल जाय, तो हानि ही क्या है। कहा—"बाइस हज़ार है। क्या देगा ?"

जाफ़र ने कहा—"अगर बाइस हज़ार हैं, तो दो हज़ार तुझे दे सकता हूँ।"

मैंने उसका भाव देखकर लिखा—"पाँच हज़ार दे, तो अभी सौदा हो जाय।"

उसने कहा—"दो हज़ार से ज्यादा नहीं दूँगा।"

मैंने लिखा—"तो फिर अपना रास्ता नाप। क्यों कलकत्ते से चला आ रहा है।"

जाफ़र ने कहा—"ढाई हज़ार ले, तो नक़द दूँ।"

"पाँच हज़ार से पैसा कम न लूँगा। बता भला, बाइस हज़ार की जगह पाँच हज़ार ले रहा हूँ। कोई हद है।" मैंने लिखकर बताया।

"और जो माल बाइस हज़ार न हुआ, तो ?"

"तो अगले इतवार को इलाहाबाद में मिलकर अपना पैसा ले जाना।"

"जा, बात पक्की...।"

"लेकिन दाम नक़द लूँगा।"

और जाफ़र ने पाँच हज़ार मेरे हाथ पर रख दिए। पेंसिल टूट गई थी, सो मैं उसे धन्यवाद भी न दे सका।

मैं दूसरे दिन सुबह की गाड़ी से इलाहाबाद चला आया। उसी दिन अख़बार में पढ़ा कि किसी ने एक सेठ, उसकी पत्नी और लड़की को कचौरियों में अफ़ीम खिलाकर बेहोश कर दिया। सेठ अभी तक होश में नहीं आए हैं, लेकिन अस्पताल में उनकी पत्नी और लड़की ने अपना सब ज़ेवर और सामान देखकर कहा कि चोरी कुछ नहीं गया।

तीसरे दिन जाफ़र का पत्र मिला। उसने लिखा था—"पाँच हज़ार का सौदा था, इसलिये तेरे माल का नक़द बाइस हज़ार ही लिया है। चाहता, तो उसकी औरत का ज़ेवर भी ले लेता।"

बैंक से रुपए का भुगतान हो गया है, और मैं फिर बंबई जा रहा हूँ। वहाँ रैस्टराँ खोलना चाहता हूँ। एक कहानी में पढ़ा था कि कलाकार के सिवा कोई सच नहीं बोलता, और मैं सोच रहा हूँ कि जाफ़र कलाकार था या डाकू। लेकिन मैं सचमुच डाकू हूँ, क्योंकि मैंने जाफ़र से सौदा किया था, और वह भी उसकी कला के लिये। मैं शायद कभी न सोच पाऊँ कि जाफ़र ने सेठ के रुपए कैसे प्राप्त किए होंगे, और यह प्रश्न मुझे जीवन-भर जाफ़र-जैसे आदमी के सत्य का स्मरण कराता रहेगा।

सूना घर

तीन साल से इस घर में दीपोत्सव के प्रकाश की किरणें नहीं थिरकतीं। तीन साल पहले शोभा अपने हाथों इसी कमरे की दीवार पर लक्ष्मीजी का संदर-सा चित्र बनाती थी, स्वामी और नन्ही के साथ बैठकर आरती उतारती थी, पूजा करती थी। फिर तीनो प्राणी घर-भर में दीप सँजोते थे। अँधेरी रात में यह घर भी नील गगन का एक टुकड़ा-सा लगता था, जिसमें सुनहले सितारे झिलमिलाते थे।

कल सारा शहर दीप-मालाएँ पहनेगा। गृह-स्वामी अपने स्त्री-बच्चों के साथ दीपोत्सव मनाएँगे, नगर की शोभा देखते डोलेंगे। खिलौने और मिठाइयाँ लाएँगे। नन्हे बच्चों की किलकारियों से आँगन-आँगन गूँजने लगेंगे, नवयुवतियाँ मंगल-गीत गाएँगी, सुहागिनें अपने-अपने स्वामियों के शुभ भविष्य की कामना करेंगी, समझदार लोग लक्ष्मी से प्रार्थना करेंगे कि देश धन-धान्य से पूर्ण हो, और परतंत्र देश को स्वाधीनता प्राप्त हो....!

आज फिर शोभा के मन में आप-ही-आप स्वाधीनता का भाव आ गया। उसे मालूम है कि वह पहले इतनी समझदार नहीं थी, लेकिन आज वह अपने आपमें जितनी सहन-शक्ति पा रही है, उतना ही ज्ञान भी।

जिस स्वतंत्रता के लिये उसके प्राण-प्रिय स्वामी ने अभिमान से सिर उठाकर दमन की आग में बढ़ जाना श्रेयस्कर समझा, उस स्वतंत्रता के प्रति वह अनभिज्ञ बनकर कैसे बैठी रहेगी!

उसे मालूम है कि कल, वर्ष में एक बार, आनेवाला त्यौहार मनाने में वह चौथी बार फिर अपने आपको असमर्थ पाएगी।

दुनिया आगे बढ़ती जाती है, ऐसा उसने स्वामी के नाम आनेवाले समाचार-पत्रों में पढ़ा है, किंतु वह उन्हें पढ़कर सोचती है कि वह दुनिया से बहुत दूर है—जिनके लिये दुनिया आगे बढ़ रही है, वे उसके लिये अपरिचित हैं। उसकी ज़िंदगी तो बढ़ते-बढ़ते इतनी बढ़ गई है कि वह अपनी सीमित दुनिया को पिछड़ते हुए पाती है, और इतना अंतर केवल तीन साल के अर्से में ही हो गया। संसार के लिये जिसे आज सरमाएदार कल्याणकारी कहते हैं, वही कल्याणकारी वस्तु, वही कल्याणकारी विचार, उसी की तरह न-जाने कितने विवश प्राणियों के लिये विनाश का कारण बन रहे हैं। ऐसा कल्याण संसार कैसे 'सहन' करेगा, जो व्यक्तिगत स्वार्थों की छाया में पनपकर जन-हित के लिये अभिशाप बने। अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये जो यह कहते हैं कि सभी को भोजन-वस्त्र और जीवन-निर्वाह के साधन प्राप्त हों, उनके लिये महा-काल के हाथ क्यों सुन्न हो गए हैं; जब कि यह बात कहनेवाले बहुत हैं, पर कार्य-रूप में परिणत करना जान-बूझकर उसमें

से एक भी उचित नहीं समझता—अगर कोई समझता, तो क्या आज उस बेचारी का यह हाल होता !

संसार में वह केवल एक व्यक्ति को शत्रु मानती है। उसे मानना पड़ता है, इच्छा न रहते भी, वह दिल और दिमाग़ में चलनेवाली दो परस्पर विचार-धाराओं में से, इस स्थल पर, दिल की आवाज को ज्यादा महत्त्व देती है।

केशव—वह नवयुवक, जिसकी अल्हड़ता और विचार शोभा को बार-बार बताते थे कि इसकी आत्मा में कविता और मस्तिष्क में राजनीति है ! बड़े-बड़े बिखरे हुए बाल आँखें तक ढकते थे ! गाल पिचके-पिचके थे, किंतु उसकी प्रभावशाली वाणी उसकी अनेक कमियों पर पर्दा डालती थी। तीन-तीन दिन तक खद्दर का एक ही पाजामा और कुरता पहनता था । चप्पल फटी थी, लेकिन इस सादगी पर मोहित होनेवाली शोभा और उसके स्वामी भी कहीं पहले ही इस व्यक्ति के हृदय की काली कोठरी को देख पाते, तो आज यह दिन न आता कि रोते-रोते शोभा के आँसू तक सूख गए।

जिस तबक़े का यह युवक था, आज उसी तबक़े के लोग देश-सेवकों को ग़द्दार कहते हैं, इसलिये कि उनकी, ख़ुद की, ग़द्दारी पर परदा पड़ जाय। काश, शोभा या उसके पति को पहले ही ज्ञात होता कि जिसे वे अभिन्न समझते हैं, वही एक दिन उनके लिये आस्तीन का काला साँप साबित होगा।

देश के एक छोर से दूसरे छोर तक क्रांति की अग्नि धधक उठी थी। स्वामी ने उस समय देश के लिये अपने जिस कर्तव्य का पालन किया था, उस पर शोभा को जीवन-पर्यंत अभिमान रहेगा। एक दिन वह अचानक ही गायब हो गए। शोभा ने उस दिन यह सोचने से इनकार कर लिया कि वह दमन का शिकार हो गए हैं। वह अकेली नन्ही के साथ रह गई, और अपने रतनारे नयनों में विकल प्रतीक्षा के सपने बसाकर उनकी राह देखा करती। उसका स्वप्न सत्य हुआ। एक दिन वह अचानक आए, और दूसरे दिन ही केशव भी आ गया। उसने कहा कि उनके पीछे पुलिस पड़ी है। वह उन्हें अपने साथ किसी सुरक्षित स्थान में छिपाने के लिये ले गया था। और, बिदा के वे अंतिम क्षण शोभा को जीवन-भर याद रहेंगे।

उसी सप्ताह में उसने समाचार-पत्रों में स्वामी की गिरफ़्तारी का समाचार पढ़ा, और वह सन्न से रह गई। फिर उस केशव की शक्ल उसने नहीं देखी। नीलम ने बताया कि उसके स्वामी को गिरफ़्तार कराके पाँच सौ रुपए का इनाम प्राप्त करनेवाला वह केशव उन लोगों की जमात का है, जो अपने आपको देश-भक्त कहते हैं।

शुरू में शोभा के हृदय में प्रतिकार की भावना जागी थी, किंतु जेल से पति का जो पहला पत्र आया था, उससे

उसे बड़ी सांत्वना मिली थी, और धैर्य के साथ आने-वाले दिनों की मुश्किलों का सामना करने के लिये तैयार हो गई। पहले उसने सोचा कि घरों को जलाकर देश-भर को जो 'जीवित मुर्दों' का श्मशान बनाने पर तुले हैं, उनके अपराधों की सज़ा क्या राष्ट्रीयता की अग्नि में तपा हुआ देश न देगा? किंतु फिर धीरे-धीरे वह सोचने लगी कि अपराधी को दंड देना सज़ा नहीं है, उसे क्षमा करना ही सबसे बड़ी सज़ा है।

शोभा के धैर्य की सीमाओं में उस समय दरारें पड़ गईं, जब नन्ही पंद्रह दिन बीमार रहकर, अपनी निराधार मा को बिलखता हुआ छोड़ परलोक सिधार गई।

शोभा पागल हो जाती, यदि पुनः उसे स्वामी का वैसा पत्र न मिलता। किसी तरह अपने आपको सँभालकर वह अपनी जीर्ण-शीर्ण नौका को एक आशा के सहारे खेने लगी।

पास-पड़ोस के लोग, नाते-रिश्ते के सफ़ेद कपड़े पहनने-वाले सरकारी नौकर, जब उसके लिये इतने भी न रहे कि मरने-जीने का हाल तक सुन लेते, तो उसने इस स्वार्थी जगत् को ही अपने से दूर समझा, और अपने हृदय में शक्ति का संचय किया। सारे विरोधों और लांछनाओं के बीच भी वह साहस के साथ खड़ी रही, इसलिये कि जिनकी उसे बाट जोहनी पड़ रही है, वह अभी तक नहीं आए हैं।

फिर अखबारों में छपा कि जेल के अंदर उसके स्वामी पर अनेक अत्याचार होते हैं, उनसे अनेक प्रकार की बातें पूछी जाती हैं, जिन्हें वह नहीं जानते, लेकिन तब तक शोभा इतनी समझदार हो गई थी कि वह जानने लगी थी कि सोना तपकर ही दमकता है। मुसीबतें झेलते हुए जिन्हें एक महान् उद्देश्य की पूर्ति करनी है, उसके स्वामी उन्हीं वीरों में से एक हैं, जिन पर सारे देश को गर्व है।

भारतवर्ष-नामक बड़े जेलखाने में स्थित छोटी-छोटी जेलों के द्वार खुलने लगे, और देश पर जान निछावर करने-वालों की रिहाई होने लगी। विदेशी सरकार ने सुलह के लिये क़दम बढ़ाया। नेता बाहर आए।

शोभा की प्रतीक्षा में बेचैनी और बढ़ने लगी। सुलह न हो सकी, लेकिन नेताओं की रिहाई जारी रही। शोभा पत्रों की एक-एक पंक्ति ध्यान से पढ़ने लगी, लेकिन उसके स्वामी का अभी तक कोई पता नहीं लगा कि कब आएँगे।

उसने पत्रों में यह भी पढ़ा कि केशव जिस जमात का है, उसके विरुद्ध सारे देश में आंदोलन छिड़ गया है। नेताओं के छूटने के साथ ही उनकी असलियत सामने आ गई है। नेताओं ने उनके विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करने का निश्चय किया है। किंतु अब उसे इस तरह के समाचारों से कोई विशेष लगाव नहीं रहा है।

जेल से छूटकर आनेवाले कुछ लोग शोभा से मिलने भी

आए थे। स्वामी के समाचार भी उसे मिले कि वह अच्छे हैं। उन्होंने धीरज बँधाया कि वह शीघ्र ही छूट जायँगे। लेकिन यह 'शीघ्र' शोभा के लिये शताब्दि से भी अधिक है। सब आते जा रहे हैं, वह जाने कब आएँगे।

पड़ोसी और नातेदारों में भी परिवर्तन देख रही है शोभा। वे भी अब उसकी पूछने लगे, लेकिन वह तटस्थ है, निर्विकार और निष्पक्ष है। अच्छे और बुरे दिनों का फ़र्क़ और ग़ुलामी की भावना को समझती है।

प्रतीक्षा तीव्रतर होती जा रही है। वह सोचती है कि कल शाम तक भी अगर वह आ गए, तो इस घर में दीप जलेंगे। उसकी विकलता में रह-रहकर नन्ही की छवि भी झलक जाती है, लेकिन इस विवशता की समस्या का समाधान क्या है, यह वह नहीं सोच पाती कि फिर विकल मन स्वामी के दर्शनों की उत्सुकता से भर जाता है।

शोभा देख रही है कि जैसा सूना यह घर है, वैसा सूना उसका मन नहीं है। मन में किसी की मूर्ति है, जिसे वह नयनों के सामने साकार देखना चाहती है।

दीनों के भगवान्

संध्या की लाली क्षितिज के किनारों पर फैल गई थी, और दूर गेहूँ के खेतों के छोर तक गहरा कोहरा छा गया था। अपनी झोपड़ी की ओर जाते-जाते, राह में, पीपल के पेड़ के नीचे शूद्रक थककर बैठ गया। ठंड धीरे-धीरे बढ़ रही थी, और हवा चलने लगी थी, लेकिन वह बैठा-बैठा संध्या की लाली की ओर निहार रहा था। उसके मुख पर चिंता और करुणा के भाव दृष्टिगोचर होते थे।

वह सोच रहा था कि कल भगवान् की मूर्ति का रथ नगर की परिक्रमा करनेवाला है। नगर में उत्साह से भगवान् की पूजा हो रही है। कल सभी नर-नारी उनके दर्शन करेंगे। केवल उसी को वहाँ उपस्थित होने की आज्ञा नहीं है। लेकिन जब वह भगवान् की सुंदर मूर्ति को हृदय में विराजमान किए हुए है, तब उसे क्या; भगवान् के दर्शन सबके साथ न कर सकेगा, तो क्या हुआ। वह प्रभु तो उससे दूर नहीं हैं, जो हर जगह उपस्थित हैं, जिनकी लीला अपरंपार है, और जो सदा सबके पास रहते हैं।

शूद्रक ने नेत्र बंद कर लिए, और मन-ही-मन त्रिभुवननाथ की प्रार्थना की। उस समय उसके मुख पर चिंता और करुणा

के भाव नहीं थे ; उस समय तो वह शांति और आनंद का अनुभव कर रहा था।

जब उसने नेत्र खोले, तब अँधेरा गहरा हो चला था, और आकाश में तारे झिलमिलाने लगे थे। वह निश्चिंतता से उठा, और प्रसन्नवदन अपने घर की ओर चल दिया।

❀ ❀ ❀

दूसरे दिन राजमार्ग फूलों की मालाओं से सजाया गया था, और नगर के सभी नर-नारी स्वच्छ वस्त्र धारण किए हुए राजमंदिर की ओर जा रहे थे। राजा की ओर से सभी सेवकों को पुरस्कार दिए गए थे। शूद्रक के अन्य साथी प्रसन्नता से अपने-अपने पुरस्कार प्राप्त करके घरों में खुशियाँ मना रहे थे।

शूद्रक घर नहीं आया। वह मार्ग के एक ओर चुप-चाप खड़ा मंदिर की ओर जानेवाले जन-समूह को देख रहा था। जब महामंत्री का हाथी उस ओर से निकला, तो उन्होंने शूद्रक को देख लिया। उन्होंने उसे पास बुलवाकर कहा—"शूद्रक ! तुम भी देवदर्शन कर सकते हो।"

राजमंत्री की ओर विनीत मुद्रा से देखकर शूद्रक ने कहा—"राजाओं की भाँति देवदर्शन करने का अधिकार मुझे नहीं है स्वामिन्।"

राजमंत्री को शूद्रक के उत्तर से आश्चर्य हुआ। उन्होंने

पूछा—"भला फिर तुझे देवदर्शन का सौभाग्य कब प्राप्त होगा ?"

हाथ जोड़कर शूद्रक ने कहा—"जब भगवान् मेरी कुटी में पधारेंगे नाथ !"

राजमंत्री शूद्रक की मूर्खता पर हँसे, फिर बोले—"मूर्ख ! महाराज तो उनकी मूर्ति के दर्शन करने जा रहे हैं, और भगवान् स्वयं तेरे घर पधारेंगे !"

शूद्रक ने दीन भाव से कहा—"दीनों का उस अंतर्यामी के सिवा और है ही कौन राजन् !"

राजमंत्री ने दयार्द्र भाव से उसकी ओर देखकर कहा—"मूर्खता न कर। भगवान् के दर्शन करने हों, तो हमारी कृपा से लाभ उठा।"

नतमस्तक हो शूद्रक ने कहा—"नहीं देव !"

राजमंत्री का हाथी जब आगे बढ़ गया,, और भगवान् की रथयात्रा में बजनेवाले घंटे-घड़ियालों की ध्वनि उसके कानों में पड़ी, तब वह अपनी झोपड़ी की ओर चल पड़ा।

घर आकर शूद्रक रोने लगा, और भगवान् की मूर्ति के सामने हाथ जोड़कर दीन भाव से कहने लगा—"प्रभो ! तुमने यह क्या किया ? राजमंत्री की कृपा से आज मैं तुम्हारे दर्शन कर लेता, लेकिन तुमने यह क्या कहलवा दिया ?"

❀ ❀ ❀

तीसरे प्रहर जब भगवान् का रथ नगर-परिक्रमा करके राजमंदिर को वापस लौट चुका था, तब शूद्रक उठा और आँसू पोंछकर उसने स्नान किया और अपने काम को चल दिया।

राह में राजपुरोहित के भाई के दर्शन हो गए। शूद्रक ने उन्हें प्रणाम किया।

उन्होंने कहा—"क्यों रे, तू कितना मूर्ख है कि जब स्वयं राजमंत्री ने तुझे भगवान् के दर्शन करने की अनुमति प्रदान की, तब भी तूने स्वीकार नहीं किया?"

हाथ जोड़कर उसने कहा—"लेकिन प्रभो! वह भगवान् तो राजाओं को दर्शन देते हैं। मेरे भगवान् तो कभी स्वयं आकर मुझे दर्शन देंगे।"

उन्होंने कहा—"तू तो सदा मूर्खता की बातें करता है। कहीं भगवान् महाराज का राजप्रासाद छोड़कर तेरी कुटी में पधार सकते हैं!"

जब शूद्रक चुप रहा, तो वह बोले—"आज तू रथयात्रा का जुलूस देखता, तो तेरी आँखें खुल जातीं। सोने के रत्न-जटित रथ पर भगवान् की स्वर्ण-प्रतिमा विराजमान थी, और अनेक साधु-संत, महात्मा और राजा-महाराजा उनके दर्शन कर रहे थे। तू भगवान् के दर्शन कर लेता, तो जन्म-जन्मांतर के पाप धुल जाते।"

शूद्रक ने विनीत स्वर में कहा—"तो क्या देव! भगवान् का यही वास्तविक रूप है कि वह मूल्यवान् आभूषण

पहनकर विद्वानों और धनी व्यक्तियों को ही दर्शन दें? क्या उनके समक्ष भक्तों के लिये कोई स्नेह नहीं है?"

राजपुरोहित के भाई ने समझा कि शूद्रक महामूर्ख है, और वह चले गए। शूद्रक ने कौतूहल-वश जिस प्रश्न का उत्तर चाहा था, वह प्रश्न उसके मस्तिष्क में ही रह गया, और चिंता-मग्न ही अपना कार्य करता रहा।

❀ ❀ ❀

संध्या होते ही वह पीपल के नीचे आ बैठा, और डूबते हुए सूर्य की ओर दृष्टि किए विचारता रहा कि उसे न-जाने क्या हो गया है! वह राजमंत्री के निमंत्रण को भी कैसे अस्वीकार कर सका? और क्या वास्तव में कभी उसे भगवान् के दर्शन होंगे?

इसी समय उसने देखा, सामने से एक युवा संन्यासी आ रहे हैं। उनकी स्वस्थ और सुगठित देह पर गेरुए वस्त्र हैं, हाथ में कमंडलु है। उच्च ललाट पर चंदन लगा हुआ है, और बड़े-बड़े केश हवा में उड़ रहे हैं। उनके सुंदर, तेजोमय मुख पर सूर्य की लाली पड़ रही है, और उनके तेज को द्विगुणित कर रही है।

शूद्रक ने सोचा, इन्हीं महात्माजी से अपना प्रश्न करके शंका-समाधान करेगा। वह उठ खड़ा हुआ, और उन्हें सादर साष्टांग प्रणाम किया।

महात्माजी ने हाथ बढ़ाकर उसे उठा लिया। शूद्रक

आश्चर्य से उनकी ओर देखता हुआ पीछे हट गया, और बोला—"भगवन् ! यह आपने क्या किया। मैं शूद्र हूँ प्रभो ! आपने मेरा स्पर्श करके मुझे सात जन्म तक नरक भोगने का शाप दे दिया।"

संन्यासी कुमार ने हँसकर कहा—"नहीं वत्स ! तुम शूद्र मृत्युलोक में भले ही हो, लेकिन भगवान् के सामने उन्हीं के अंश हो। यदि उनमें तुम्हें लेश-मात्र भी भक्ति है, तो तुम्हारे पिछले जन्म के पाप भी दूर हो जायँगे।"

शूद्रक कुछ बोला नहीं, वह आश्चर्य से उनकी ओर देख रहा था। संन्यासी कुमार ने कहा—"वत्स ! मुझे भूख लगी है। भोजन की व्यवस्था कर सकोगे ?"

उसने कहा—"लेकिन भगवन् ! मैं शूद्र हूँ, और आप...."

उन्होंने शूद्रक की बात काटकर कहा—"वत्स ! तुम अपने अतिथि को भोजन भी न करा सकोगे ?"

शूद्रक ने कहा—"तो क्या आप मेरा आतिथ्य-सत्कार स्वीकार कर सकेंगे ?"

योगिराज ने कहा—"मैं तो स्वयं ही तुम्हारा अतिथि बनकर आया हूँ।"

शूद्रक ने उनकी ओर देखना चाहा, पर देख न सका; फिर कहा—"मेरे जन्म-जन्मांतर के पाप धुल जायँगे प्रभो, यदि आप मेरी झोपड़ी में चलने का कष्ट कर सकें।"

शूद्रक के साथ-साथ योगिराज चल दिए।

राह में शूद्रक ने पूछा—"भगवन् ! क्या मेरे एक प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करेंगे ?"

उन्होंने कहा—"पूछो।"

शूद्रक ने कहा—"मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या भगवान् दीन-दुखियों के घर नहीं आते ?"

उन्होंने कहा—"भगवान् को जो भी सच्चे हृदय से बुलाता है, उसी के यहाँ वह जाते हैं।"

प्रसन्न हो शूद्रक ने कहा—"तो मेरे यहाँ भगवान् पधारेंगे ?"

हँसकर उन्होंने उत्तर दिया—"अवश्य। लेकिन तुम भगवान् से क्या कहोगे ?"

शूद्रक ने कहा—"मैं उनसे कहूँगा कि प्रभो ! तुम मुझे अपने साथ ले चलो।"

योगिराज बोले—"ऐसा क्यों ?"

शूद्रक ने कहा—"प्रभो ! मैं मोक्ष चाहता हूँ।"

योगिराज के पीछे-पीछे शूद्रक ने भी कुटी में प्रवेश किया।

❀ ❀ ❀

प्रातःकाल लोगों ने देखा कि शूद्रक की निर्जीव देह झोपड़ी में पड़ी है। उसके चेहरे पर आंतरिक आनंद का तेज छाया हुआ था।

[कवि ठाकुर की एक अमर रचना के आधार पर]

न्याय के लिये

ईसवी सन् से पहले की बात है। उत्तरी भारत में एक राज्य था, जिसका नाम आज लोग भूल गए हैं। राज्य छोटा-सा ही था, लेकिन वहाँ सभ्यता और संस्कृति का सूर्य उदय हो चुका था। राजा अपने न्याय के लिये सारे राज्य में पूजा जाता था। चोर-डाकुओं का नाम भी न था, स्त्रियों का आदर होता था, पंडितों का मान होता था, और प्रजा में सुख-शांति थी।

राजमंत्री का लड़का सुंदर, विद्वान् और स्वस्थ था। उसका नाम जयराज था। राजा ने निश्चय कर लिया था कि मंत्री के बाद जयराज को ही राजमंत्री बनाएँगे। राजा जयराज से प्रसन्न था, उसके प्रति कृपालु था, और उसे बहुत अपना समझता था।

नदी के उस पार से आनेवाली ठंडी-ठंडी हवा के झोंके जब अपने साथ रजनीगंधा की मादक महँक लेकर नगर में प्रवेश करते, तब जयराज अपना घोड़ा बढ़ाता हुआ धीरे-धीरे राजधानी की ओर जाता हुआ दिखाई देता। लेकिन सूनसान राजपथ पर रात के अँधेरे में सिवा पहरे-दारों के उसे कभी कोई न मिलता। पहरेदार आदर-पूर्वक

जयराज को अभिवादन करते और वह सीधा अपनी राह चला जाता। दूर तक फैले हुए सघन अंधकार की नीरवता में जयराज के घोड़े की टापें बहुत देर तक सुनाई पड़ती रहतीं, और तब विलीन हो जातीं। पहरेदार सोचने लगते कि उनका भावी मंत्री प्रजा के सुख-दुख की खोज-ख़बर लेने के लिये रात को घूमा करता है। रात का तीसरा पहर जब शुरू होता, तो जयराज उसी राह वापस लौटता हुआ दिखाई पड़ता, और पहरेदार उसके घोड़े की छाया तब तक देखते रहते, जब तक वह मंत्री के महल में प्रवेश न कर जाता।

सेनापति का महल नगर से दो मील के फ़ासले पर नदी-किनारे था। सेनापति और राजमंत्री के महलों में दो-ढाई मील का अंतर था। सेनापति की पुत्री तमिस्रा अपने बाग़ में जाकर रोज़ जयराज से मिलती थी। जयराज ने अपने माता और पिता से कह रक्खा था कि वह रात को प्रजा के दुख-सुख की खोज-ख़बर लेने का प्रयत्न करता है।

राजा के भी एक पुत्र था, विजयसिंह। एक दिन नदी में स्नान करते हुए तमिस्रा भँवर में पड़ गई। तब अचानक विजयसिंह वहाँ आ पहुँचा, और उसी ने तमिस्रा के प्राणों की रक्षा की। उस दिन से विजयसिंह तमिस्रा पर मोहित था। वह उसे अपनी अर्धांगिनी बनाने को उत्सुक था। लेकिन तमिस्रा जयराज को मन-ही-मन अपना आराध्य

देव मान चुकी थी। उसे यह भी ज्ञात न था कि विजयसिंह उसे किस रूप में चाहता है। वह तो राजकुमार को सदा अपने भाई के रूप में ही देखा करती थी। जयराज भी विजयसिंह के मन की बात से अनभिज्ञ था। उधर विजयसिंह को भी यह नहीं मालूम था कि तमिस्रा और जयराज एक दूसरे से प्रेम करते हैं। इस तरह तीनों ही एक दूसरे की भावनाओं से अनभिज्ञ थे। तीनों के माता-पिता भी यह नहीं जानते थे कि उनकी संतानों के हृदयों में कैसा कोलाहल और हाहाकार मचा हुआ है।

वसंत की एक मतवाली रात को, जब कि सारी प्रकृति सोलह सिंगार किए ऋतुराज का स्वागत कर रही थी, जयराज तमिस्रा को लिए रवाना हुआ। उसे यह मालूम हुआ कि विजय भी तमिस्रा से अपने प्रेम का फ़ैसला करने के लिये पहले ही जा चुका है। पहरेवालों ने अवश्य एक दूसरे को देखा था, और वे लोग आपस में तरह-तरह की बातें करते थे।

जब जयराज तमिस्रा के बाग़ में पहुँचा, तो उसने सुना कि वह राजकुमार से कह रही है—"मैं भी तुमसे प्रेम करती हूँ विजय!" और तमिस्रा की यह अधूरी बात सुनकर ही जयराज लौट आया, अपने हृदय में भीषण झंझावात लेकर। वह तूफ़ान के बीच पड़ी नाव की तरह हो गया था। उसके सामने केवल वही एक वाक्य था रहा

था। वह उसके आगे-पीछे कुछ भी जानने को उत्सुक न था। क्रोध के कारण वह पागल हो रहा था। बार-बार उसका हाथ तलवार पर जाता था। कभी वह विजयसिंह को मार डालने की सोचता और कभी तमिस्रा को। भला-बुरा सोचने की सामर्थ्य भी उसमें न रही थी। उसका ख़ून खौल रहा था, और मस्तिष्क में केवल तमिस्रा का एक वाक्य चक्कर लगा रहा था। जयराज ने सोचा, वह मंत्री का पुत्र है, भले ही राजकुमार से अधिक सुंदर, स्वस्थ और विद्वान् हो, लेकिन उसकी अर्धांगिनी बनकर तमिस्रा महारानी तो नहीं बन सकती थी। उसने सोचा, उसकी तमिस्रा महारानी बनने की लालसा से उसे ठुकरा रही है। पहले तो वह सोचने लगा कि तमिस्रा से पूछे, लेकिन क्रोध ने उसके विचारों पर विजय पाई, और उसने निश्चय कर लिया कि अपने अपमान का बदला लेगा। रात-भर वह अपनी तलवार लिए बैठा रहा।

कई दिन बीत गए, लेकिन जयराज का क्रोध शांत न हो सका। उसने निश्चय कर लिया कि जो तमिस्रा उसकी न हो सकेगी, वह तमिस्रा राजकुमार विजय की भी नहीं हो सकती। क्रोध से सुर्ख़ आँखें किए, हृदय में प्रतिहिंसा के धधकते हुए शोले छिपाए उसने कई दिन बिता दिए। वह न सोच सका कि किस तरह प्रतिकार ले।

तमिस्रा बहुत परेशान थी कि जयराज क्यों नहीं आता।

उसने कई बार अपनी दासी को उसके समाचार लाने के लिये भेजा, लेकिन दासी ने कहा, वह किसी से भी नहीं मिलते। एक दिन रात को, जब कि अँधेरा छा गया, और कोहरे की मोटी चादर जमीन पर लहराने लगी, तमिस्रा पुरुष-वेश में, घोड़े पर सवार होकर, मंत्री के राजमहल की ओर रवाना हुई।

दरबान ने जयराज को सूचना दी कि कोई राजकुमार आपसे तुरंत मिलना चाहते हैं। इतनी रात गए कौन मिलने के लिये आया होगा। यह सोच नित्य की ही तरह जयराज दरबान से कह बैठा कि मैं किसी से न मिलूँगा। लेकिन तुरंत ही उसने कहा कि जो आया है, उसे साथ ले आए।

पुरुष-वेशधारिणी तमिस्रा को जयराज के कमरे में छोड़ कर दरबान तो चला गया। इधर देखते ही जयराज का क्रोध ऐसे बढ़ा, जैसे किसी ने धधकती आग में घी डाल दिया हो। उसने म्यान से तलवार निकाली, और तमिस्रा के कुछ कहने के पहले ही उस पर वार किया। तमिस्रा का सिर और धड़ अलग हो गए। जयराज चिल्लाने लगा—"पिशाचिनी नारी, मैंने तुझसे जितना प्रेम किया था, उतनी ही घृणा भी की। एक दिन मैं तुझे प्राणों से अधिक प्यार करता था, और आज मैं तुझे मौत से अधिक नफ़रत करता हूँ। एक सच्चे प्रेमी को धोखा देने की सजा तुझे मिल गई....।"

जयराज की आवाज़ सुनकर उसकी मा ने कमरे में प्रवेश किया, और अवाक् होकर तमिस्रा के मृत शरीर को देखा। जयराज ने कहा—"मैंने इसका वध किया है मा! मुझे प्रेम के भुलावे में रखकर यह राजकुमार विजय को प्रेम करती थी। यह राजरानी बनना चाहती थी, लेकिन मैं अपने प्रेम की लाश पर यह सब नहीं देख सकता था।"

मा ने कहा—"मैं जानती हूँ जयराज कि जो कुछ तूने किया, वह क्रोध में पागल होकर किया है, तमिस्रा तुम्हीं को चाहती थी, तू संदेह में पड़कर अनर्थ कर बैठा। लेकिन अब तो तुझे मृत्यु-दंड मिलेगा ही।"

अब जयराज की आँखों के सामने मौत नाच रही थी। उसने दयार्द्र नेत्रों से मा की ओर देखा। मा ने कहा—"मैं कुछ नहीं कर सकती। राज्य न्याय के लिये प्रसिद्ध है। तुझे अपने किए का फल मिलेगा ही। यदि यही काम राजकुमार भी करता, तो उसे भी मृत्यु-दंड मिलता।"

जयराज की माता ने संकेत किया, और जयराज के भागने के पहले ही सिपाहियों ने आकर उसे गिरफ़्तार कर लिया। मंत्री भी आए। सारा हाल सुनकर वह भी क्रोधित हुए। और, उन्होंने कहा—"मैं न्याय के लिये अपने पुत्र को मृत्यु-दंड दिलवाने में कोई भी आगा-पीछा न करूँगा।" सिपाही जयराज को पकड़कर ले गए।

जयराज की मा राजमंदिर में गई। परमात्मा से क्षमा

माँगते हुए अपने पुत्र की आत्मा को शांति देने की प्रार्थना की। पंडितों और विद्वानों से उसने कहा कि वे न्याय की रक्षा के लिये और परमात्मा द्वारा बनाए हुए नियमों का उल्लंघन न करने के लिये राजदरबार में सच-सच कह दें। उन्होंने पंडितों के सामने ही मंदिर में प्रतिज्ञा की, वह सच-सच कहेंगी, उन्हें न्याय के सामने पुत्र का मोह नहीं डिगा सकता।

सेनापति और विजयसिंह को पूरी आशा थी कि जयराज को अपने किए की सजा मिलेगी ही, चाहे वह महाराज का प्रिय जन हो, चाहे वह राजमंत्री का पुत्र हो, और चाहे वह तमिस्रा का प्रेमी रहा हो।

जेल में जयराज अपने जीवन की चिंता के कारण अधीर हो रहा था। उसे लगता कि मौत हर क्षण उसके पास आती जा रही है, और तमिस्रा की आत्मा कहीं दूर से पुकार-पुकारकर कह रही है कि वह निर्दोष थी। जयराज जीवन और मृत्यु के बीच में पड़ा काँप रहा था।

जिस दिन अपराधी जयराज का मुक़दमा होने को था, उस दिन सभा-भवन खचाखच भरा हुआ था। ऐसे अपराध उस समय कम हुआ करते थे। दूर-दूर से लोग राजा का न्याय देखने के लिये आए हुए थे।

अपराधी के कठघरे में जयराज खड़ा था। सबसे पहले दरबान को गवाही देनी थी। उसने जयराज के चेहरे की

ओर देखा और कहा—"जिस हत्या का अपराध मंत्री-पुत्र पर लगाया गया है, उसके संबंध में मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि जिस रात को यह हत्या हुई है, उस रात को महल में कोई भी नहीं आया।"

सबने अवाक् होकर दरबान की बात सुनी और देखा कि मुक़दमा बल खा रहा है।

जयराज दरबान की ओर देखता रह गया।

जयराज की मा के हृदय में भयानक तूफ़ान लहरें ले रहा था। राजा की आज्ञा मिलने पर उन्होंने सत्य बोलने का वचन देते हुए कहा—"यह मेरा इकलौता पुत्र है, और मैं न्याय की रक्षा के लिये सत्य बोलने का वचन दे चुकी हूँ। जयराज को मुझसे अधिक संसार में कोई नहीं जानता। मैं यह भी जानती हूँ कि जयराज तमिस्रा को हृदय से अधिक चाहता है। और, यह तमिस्रा से ब्याह करने को इच्छुक था। तमिस्रा भी इसे प्राणों से अधिक प्यार करती थी। जिस समय इसके शयनागार में तमिस्रा की हत्या हुई है, उस समय यह मेरे पास बैठा हुआ ये ही सब बातें कह रहा था। जब यह मेरे पास से अपने शयनागार में गया, तुरंत इसकी चीख़ सुनकर मैं वहाँ पहुँची। मैंने देखा, तमिस्रा की मृत देह ज़मीन पर पड़ी है, और यह भयभीत होकर उसकी ओर देख रहा है। मैंने समझा, तमिस्रा की हत्या इसी ने की होगी, लेकिन अब मैं समझती हूँ कि असली हत्यारे उस समय तक भाग चुके

थे। न्याय की रक्षा के लिये मैंने इसे पुलिस के हाथों सौंप दिया था।"

जयराज की मा अपने स्थान पर बैठ गई। सभा-भवन में सन्नाटा छाया हुआ था। मुक़दमे का रुख़ एकदम पलट गया। जयराज की मा और दरबान के अलावा कोई भी ऐसा व्यक्ति न था, जिसके कहने से मुक़दमे को बल मिलता।

राजा ने जयराज से कहा—"तुम कुछ कहना चाहते हो?"

जयराज ने धीरे से कहा—"मेरी मा और दरबान, दोनो ने ही झूठ कहा है। मैं ही असली मुजरिम हूँ, मुझे मृत्यु-दंड मिलना ही चाहिए।"

जयराज चुप हो गया। अधिक बोलने की शक्ति जैसे उसमें रही ही न थी। राजा निर्णय सुनाने लगा—"दरबान और महामंत्री की पत्नी इस राज्य के ही अंग हैं, उन्होंने सत्य बोलने की शपथ ली है। उन्होंने जो कुछ कहा है, उससे मालूम होता है कि जयराज अपराधी नहीं है। जयराज कहता है कि उसने सेनापति की पुत्री का वध किया है। वह स्वर्गीय तमिस्रा को प्रेम करता था, तमिस्रा भी उसको प्रेम करती थी। वह उसी प्रेम के कारण मृत्यु का अधिकारी बनना चाहता है। उसका स्वास्थ्य देखने से पता चलता है कि वह अपनी प्रेयसी की मृत्यु से विक्षिप्त हो रहा है। ऐसी दशा में केवल अपराधी के कमरे में ही मृत देह का पाया जाना काफ़ी सबूत नहीं है। मैं

जयराज को हत्या के इस अपराध से मुक्त करते हुए यह घोषणा करता हूँ कि असली अपराधी का पता लगानेवाले को राजकोष से पचास सहस्र मुद्राएँ पुरस्कार-स्वरूप दी जायँगी।"

न्याय सुनकर सब स्तब्ध रह गए। सभा विसर्जन हुई, और जयराज अपने पिता, राजमंत्री के साथ अपने महल पहुँचा।

उसी रात को जयराज की मा मंदिर में पहुँची, और देवता की मूर्ति के सामने हाथ जोड़कर कहा—"मैं असत्य बोली! मेरा अपराध अक्षम्य है प्रभो! लेकिन मैं मा हूँ। मा यह कभी न चाहेगी कि उसके कहने से उसके पुत्र को मृत्यु-दंड मिले। लेकिन अपने अपराध के लिये मैं अपने प्राण दे रही हूँ।"

वीर महामंत्री की पत्नी ने हीरे की अँगूठी चाटकर आत्म-घात कर लिया।

दरबान उसी रात नदी-किनारे खड़ा होकर कह रहा था—"हे भगवान्, मैंने जो अपराध किया है, उसका दंड तेरे न्यायालय में क्या है, यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन मैंने अपने स्वामी के प्रति सदा की ही तरह स्वामिभक्ति बरती है। मैं अपराधी हूँ, इसलिये....।" और वह नदी में कूद पड़ा। कुछ देर तक पानी में बुलबुले उठते रहे, फिर सब शांत हो गया।

उसी रात जयराज ने अपने कमरे में फाँसी लगाकर आत्मघात किया, उसके पास एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था—"मैं ही अपराधी था। तमिस्रा की हत्या मैंने ही की थी। मा की ममता के कारण और सेवक की स्वामिभक्ति के कारण मुझे दंड देने में न्याय वंचित रहा, इसलिये मैं न्याय-रक्षा के लिये आत्मघात करके तमिस्रा के पास क्षमा माँगने जा रहा हूँ।"

प्रातःकाल तीन लाशें न्यायाधीश राजा के सामने रक्खी थीं, और वह सोच रहा था कि उचित न्याय न करने के कारण वह तीन हत्याओं का दोषी है। परमात्मा उसे कभी क्षमा नहीं कर सकता। और, उसी दिन राजकुमार विजयसिंह को राजपाट सौंपकर वह तपस्या करने के लिये वन की ओर चल पड़े, जिससे पाप का प्रायश्चित्त हो सके।

परंपरा

सुनसान राह के बीच में शीशम का एक बहुत पुराना पेड़ खड़ा है। इस पेड़ की कई डालें ज़मीन छूती हुई मालूम होती हैं। इसी शीशम के पेड़ के नीचे से एक पगडंडी नगर की ओर गई है। नुकीली पत्तियोंवाली घास जैसे तमाम मैदान में उगी हुई है, वैसे ही इस पगडंडी पर भी उग आई है। और, ऐसा लगता है कि इस राह पर आना-जाना मुसाफ़िरों ने छोड़ दिया है; अगर छोड़ नहीं दिया, तो कम, बहुत कम अवश्य कर दिया है।

शीशम के मोटे तने के पास जो डाल है, उसे पकड़े हुए तमिस्ना खड़ी है। उसने एक बार डूबते हुए सूर्य की ओर देखा। सूर्य की लाल किरणें उसके चेहरे पर पड़ीं, और उसकी आँखों की चिंता ज्योतिर्मय हो उठी। सूर्य की उन डूबती हुई किरणों में जो गहरा और चमकता हुआ पीलापन लिए हुए लाल रंग था, उसके प्रकाश में उसका स्वस्थ, सुंदर शरीर स्वर्ण की तरह चमक उठा। साँझ की सर्द हवा का एक तेज़ झोंका उस विस्तृत मैदान में अकेला खड़ा हुआ शीशम के पेड़ की पत्तियों को झकझोरता हुआ उसके पास से निकला, और उसका बदन काँप उठा।

वह अपने में ही सिकुड़कर दोहरी हो गई, जैसे शरत्काल की उस हवा से पार पाना उसके लिये कठिन हो, और वह चुपचाप उसकी निष्ठुरता सहन कर लेना चाहती हो। उसकी आभूषण-हीन, सुगठित देह पर एक मैली-सी धोती लिपटी हुई थी, जो दो-एक जगह फट भी गई थी। उस मैली धोती के बीच सूर्य की किरणें पड़ने से उसकी देह ऐसी लग रही थी, मानो मैले पानीवाले ताल में कमल खिला हो। रूखे और चमकदार बालों की लटें घुटनों से नीचे लटक रही थीं, और हवा के स्पर्श से धीरे-धीरे लहरा रही थीं।

तमिस्रा ने मुँह नीचे कर लिया और चुपचाप बैठ रही। फिर सामने पड़ी एक सींक उठा ली और ज़मीन पर उल्टी-सीधी रेखाएँ खींचने लगी। उसके बाल ज़मीन छू रहे थे, और दो-चार लटें चेहरे के सामने झूल रही थीं। कभी धोती का पल्ला सिर से खिसक जाता, तो ठीक से ऊँचा करके बग़ल में दबा लेती और फिर चिंतन में डूबी हुई ज़मीन पर सींक से लकीरें खींचने लगती। कभी-कभी चेहरा उठाकर चारों ओर देखने लगती। उसने सींक एक ओर फेंक दी, और घुटनों पर ठोड़ी रखकर बैठ रही। शरत्काल की हवा की सर्द लहरियाँ जब उसके पास से निकलतीं, तो उसके कंधे ऊँचे उठकर आगे को झुक जाते, और दाँत किटकिटाते हुए वह उस फुरफुरी को सहन कर लेती, जैसे स्वेच्छा से ठंडे पानी में स्नान करके आ रही हो।

तमिस्ना ने एक बार आँखें ऊपर उठाईं। उन बड़ी-बड़ी आँखों की पुतलियों में कैसी व्यथा-भरी करुणा तैर रही थी, उस करुणा में कैसी विवशता थी, यह सूर्य की अंतिम किरणों की धूमिल आभा ने समझा होगा।

सामने विस्तृत हरा-भरा मैदान था, और उस मैदान के छोर पर धूमिल पहाड़ियों की क़तारें थीं; उन क़तारों के बाद क्षितिज दिखाई दे रहा था, और ऊपर अनंत आकाश सीमा-हीन विश्व की विवशता पर छाया था।

सामने जो पहाड़ी है, उसकी बग़ल से होकर एक नदी बहती है। इस नदी के उस पार, आठ-दस मील दूर एक गाँव है, जो यहाँ से नहीं दिखाई पड़ता। उस गाँव की आबादी बहुत ज़्यादा नहीं है। जो थोड़े-बहुत घर वहाँ हैं, उनमें पुराने ढंग और रीति-रिवाजों पर चलनेवाले लोग रहते हैं। उस गाँव में पढ़े-लिखे लोगों का अभाव है। वहाँ के लोग ईश्वर और उसकी सत्यता के बारे में कुछ न जानते हुए भी ईश्वर के अंधभक्त और विश्वासी हैं। वे सांसारिक रहस्यों से अनभिज्ञ हैं। चरित्रवान् होते हुए भी उनके लिये चरित्र का अर्थ समझना असंभव है।

और यह बीस वर्ष की आयुवाली तमिस्ना, जो इस जंगल के बीच में खड़े हुए पुराने शीशम के नीचे बैठी अपने दुर्भाग्य को रो रही है, जिसके तन पर ठीक से वस्त्र भी नहीं है, जिसकी आँखों के आँसू विवशता और व्यग्रता की

छाया में सूख चुके हैं, जिसका नीरव, एकाकी जीवन मानवता की अस्थिरता पर चिंतना कर रहा है, जिसकाभविष्य घोर अंधकार के आवरण में छिप गया और जिसके हृदय पर इतनी चोटें पड़ी हैं कि हृदय नाम की वस्तु खो चुकी है—अब वह हृदय न सरस भावनाओं को व्यक्त कर सकता है और न कठोर भावनाओं को—वह बेचारी तमिस्ना इसी गाँव की लड़की है। कैसी विडंबना है !

जो तमिस्ना भाग्य की बात सोचती है, उस तमिस्ना के विधि का विधान कुछ ऐसा है, परिस्थितियाँ उसके चारों ओर इस तरह इकट्ठी हुई हैं कि जीवन की वास्तविकता का सत्य अपना संपूर्ण प्रभाव खो चुका है। यह तमिस्ना, जिसकी आयु केवल बीस वर्ष है, परिस्थितियों के संघर्ष में हमेशा हारती रही है, हमेशा उसे असफलता ही मिली है, और अब वह असफलता उसके छोटे-से जीवन में इतनी घनीभूत हो गई है कि उससे अब उसका अंतर पीड़ा नहीं पाता। उसके सामने केवल एक निपट शून्यता का काला बिंदु चमकता रहता है, जो उसकी आँखों में बस चुका है ; और असफलता का यह काला बिंदु भी उसके जीवन में ऐसा रम गया है कि वह जाने कैसी हो गई है।

यह तमिस्ना बीस वर्ष की होगी, इस पर कौन विश्वास करेगा। जिस तमिस्ना की आँखें गड्ढे में धँस गई हैं और गालों की हड्डियाँ ऊपर उठ आई हैं, रंग फीका पड़ गया है,

और चलने में जिसके पाँव डगमगाते हैं, उस तमिश्ना का जीवन कैसा पीड़ा-युक्त रहा होगा, इसका अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है।

तमिश्ना की इस जर्जर आयु के बीस वर्षों का इतिहास अत्यंत अनोखा है। एक रूढ़िवादी गाँव में उसका जन्म हुआ। उसने अपना बाल्यकाल स्वच्छंदता से काट दिया। तमिश्ना को अपने पिता की याद नहीं, उसकी मा ने उसे स्नेह से पाल-पोसकर बड़ा किया। विधवा मा पर गाँववालों ने कैसे-कैसे आरोप और प्रहार किए, और वह किस दृढ़ता से उनका मुक़ाबला करती रही, यह तमिश्ना ने पहले कभी न सोचा था। युवती तमिश्ना के ब्याह के लिये जब गाँववालों ने जमीन सिर पर उठा ली, तब मा ने दूर के गाँव में उसका ब्याह कर दिया। बिदा की बेला में मा की आँखों में जो गंगा-जमुना समा गई थीं, उनका मोल तमिश्ना आज आँक सकी है। तमिश्ना के ब्याह में उसकी मा ने पति की एकमात्र यादगार, वह पुराना मकान भी बेच दिया था। तमिश्ना को उसके स्वामी के हाथों में सौंपकर उसने निश्चिंतता की एक साँस ली थी, जैसे एक सुखद बोझ उसकी छाती से उतर गया हो। उसकी मा अपने पति का मकान और अपनी प्यारी बेटी के बिलग होने का सदमा नहीं सह सकी, और पति-गृह में पहुँचने के कुछ ही दिन बाद तमिश्ना ने सुना कि उसकी मा अब नहीं रही। मा के मरते ही उसके सारे सुखों के महल

जैसे ढह गए, और वह दुख के असीम सागर में गोते लगाने लगी। फिर दो वर्ष बाद उसके स्वामी भी अंतिम साँस खींचकर इस नश्वर संसार से कूच कर गए। उस समय तमिश्ना आँखें फाड़-फाड़कर रह गई, उसे कहीं कुछ भी नहीं दिखाई पड़ा था। कहीं कुछ धुँधला-सा दिखाई पड़ जाता, तब भी ग़नीमत थी, लेकिन अंधकार, घोर अंधकार के सिवा उसे कुछ न दिखाई दे सका। सास-ससुर और पति-गृह के अन्य व्यक्तियों के अपमान, लांछना और तिरस्कार का भारी बोझ अपनी कोमल भावनाओं पर लेकर उसे पति-गृह से सदा के लिये निकल जाना पड़ा। वह भागती-भागती अपनी माता के घर आई। लेकिन जिस घर को बेचकर उसकी मा ने तमिश्ना के भविष्य का सहारा खोजा था, उस घर में अब तमिश्ना का क्या था। अब वह मकान।जिसका था, वह भला तमिश्ना को उसमें कैसे रहने देता; रहने देता, तो उसके अधिकारों की परंपरा नष्ट हो जाती। तमिश्ना नदी के पार बसे हुए अपने गाँव में गई, और उसने वह मकान देखा, जिसके कण-कण में, जिसकी ईंट-ईंट में, जिसके कोने-कोने में आदि से अंत तक उसके जीवन की स्मृतियों के चित्र बिखरे पड़े थे। जिस मकान में रहकर वह इतनी बड़ी हुई थी, उस मकान की ममता से वह कैसे मुक्त हो सकती थी? तमिश्ना की स्मृति का कोई जीता-जागता साथी इस संसार में रह गया था, तो वह यह मकान था।

लेकिन तमिस्त्रा! तुमने यह नहीं सोचा कि जिस मकान की नीवों में तुम्हारे शैशव की स्मृतियाँ बसी हुई हैं, जिस मकान का प्यार तुम्हारे मन में रमा हुआ है, जिस मकान के दर्शन-मात्र से तुम अपने दुख को भूलने की कोशिश कर सकती हो, वह मकान अब तुम्हारा नहीं है, उस मकान की छाया पर भी तुम्हारा अधिकार नहीं है। अब इस मकान पर जिसका अधिकार है, वह तुम्हारे जख्मों से भरे हुए दिल पर मरहम लगाने की जगह प्रहार करना उचित समझेगा। चाहे तुम प्रार्थना करो, चाहे गिड़गिड़ाओ, पर तुम्हारे आर्त कंठ की पुकार उस कठोर हृदय पर कुछ असर न कर सकेगी, जिसने रुपए देकर तुम्हारी मा से यह मकान खरीदा, और फिर जिस रुपए से तुम्हारा ब्याह हुआ और तुम स्वामी के घर पहुँच सकीं।

भूखी-प्यासी तमिस्त्रा जब अपने गाँव में पहुँची, और लोगों को ज्ञात हुआ कि उसके पति का देहांत हो चुका है, और वह ससुराल से निकाल दी गई है, तब गाँववालों ने उससे यह भी न पूछा कि वह कैसी है, कैसे आई, क्या चाहती है। तमिस्त्रा सोचा था, उसका गाँव उसे सहारा देगा, और वह साहस-पूर्वक अपने दुर्दिनों को ठेल सकेगी। लेकिन अपने गाँव में आने पर उसे लगा कि उसके दुर्दिनों पर और भी अधिक कालिख छा गई है। आते समय उसने सोचा था कि वह भिक्षा नहीं लेगी, परिश्रम करेगी, और किसी प्रकार रो-रोकर दिन काट देगी। पर वह आशा नष्ट हो गई।

वह बड़े उत्साह से अपने मकान के आकर्षण से गाँव आई थी, पर मकान के मालिक से जब अपनी प्रार्थना के बदले उसने दुतकार पाई, तो उसका उत्साह भंग हो गया, और तब उसने अपने चारों ओर देखकर अनुभव किया कि निपट एकाकीपन उसे खाने को दौड़ रहा है।

तमिश्ना को पिता की याद नहीं, मा भी गई, पति भी गया। पति-गृह भी छूटा और पितृगृह भी छूटा। अब उसके लिये संसार में कुछ नहीं रहा, कहीं उसे ठौर-ठिकाना नहीं रहा, कोई उसके लिये अपना नहीं रहा, तब उसे लगा कि जिस दुख-दर्द को वह अपने मन में दबाए हुए थी, वह दुख-दर्द, साहस की दीवार तोड़कर, उसके जीवन में व्याप्त हो गया है। अब उसके लिये मुक्ति की संभावना नहीं रही।

स्नेह, ममता और बंधन से मुक्त हुई तमिश्ना को दुख-दर्दों से तब तक मुक्ति नहीं मिलेगी, जब तक प्राणों का मोह उसे है, और जब प्राणों का मोह न रहेगा, तो वह जिस तरह सांसारिक संबंधों से मुक्त हो गई है, उसी तरह दुख-दर्दों से मुक्त हो जायगी। जीने के लिये भोजन चाहिए, और सहारे के लिये बलिष्ठ भुजाए, लेकिन तमिश्ना तो इन दोनो चीजों को पाकर खो चुकी है। तो फिर अब उसे प्राणों का मोह कैसा?

शीशम के नीचे बैठी-बैठी तमिश्ना अँगूठे से जमीन कुरेद

रही है, और सोच रही है कि जहाँ उसकी मा है, जहाँ उसका स्वामी है, वहीं उसे ठौर मिलेगा। संसार में जो इतना भेद-भाव है, उसके बीच उस असहाय नारी को भला कौन पूछेगा!

❀ ❀ ❀

तमिस्रा के विचारों का ताँता उस समय टूटा, जब उसके कानों में खड़ाऊँ की आवाज़ पहुँची, और उसने पेड़ के तने की ओट से देखा कि एक युवक हाथ में कमंडलु लिए खड़ा है। उसके शरीर पर गेरुए वस्त्र हैं, और वह जमीन की ओर देख रहा है। वह चुपचाप बैठी उस साधु की ओर निहारती रही।

फिर उसने सुना कि भिक्षु कह रहा है—"मा, कुछ भिक्षा दो।"

तमिस्रा के चेहरे पर उदास मुस्कराहट की हलकी छाया बिखर गई। साधु होकर भी यह युवक नहीं जानता कि तमिस्रा भिक्षा दे सकती है या नहीं। लेकिन वह क्या जाने। उसने सोचा होगा कि कोई मुसाफ़िर है। तमिस्रा को लगा कि उस युवक का एक-एक शब्द उसके हृदय में गहरा होकर चुभ रहा है। वह तमिस्रा, जो भरसक अपने द्वार से किसी भिक्षुक को ख़ाली हाथ नहीं लौटने देती थी, आज इस दशा में थी कि उसे स्वयं कई दिन से भोजन नहीं मिला था, और इस विस्तृत संसार में चैन की एक साँस

लेने का कहीं ठिकाना नहीं था। इस भिक्षुक को, जो उसे "मा" कह रहा है, वह क्या दे ?

भिक्षुक युवक फिर बोला—"मा, आज दिन-भर कुछ नहीं मिला है। मेरे गुरुदेव पूछेंगे, तो क्या उत्तर दूँगा।"

हाय री तमिस्रा, तू भी क्या करे? क्या तू भी इस भिक्षुक को निराश कर देगी, जिसे दिन-भर कुछ नहीं मिला, और जो तुझे "मा" कह रहा है। क्या तू इसे वैसा कोरा उत्तर दे सकेगी, जैसा तेरे नए मकान-मालिक ने तुझे दिया था? नहीं तमिस्रा, तू निराश और असहाय होने पर भी वैसा कोरा उत्तर न दे सकेगी, क्योंकि तू जानती है कि ऐसे उत्तर से आशा का सुखद स्वप्न नष्ट हो जाता है, और फिर बड़ा तीखा दुख होता है।

तमिस्रा के मन की करुणा और व्यथा के ऊपर मातृत्व के भाव तैर उठे। उसने झाँका कि युवक चुपचाप नत-मस्तक किसी आशा में खड़ा है।

तब तमिस्रा ने कहा—"ठहरो।"

युवक का चेहरा नीचा ही रहा, पर उस पर प्रसन्नता की आभा आ गई। तमिस्रा ने अपनी लाज ढकने का एकमात्र साधन, तन पर ढकी हुई धोती, पेड़ की आड़ में होकर उतारी, और भिक्षुक की ओर बढ़ा दी।

युवक भिक्षुक ने पेड़ के पीछे छिपी तमिस्रा की ओर देखने का प्रयत्न किया, किंतु उसके चेहरे पर किसी भी

प्रकार के भाव न आए उसने शांत भाव से हाथ बढ़ाकर वह धोती ले ली, और जिस तरफ़ से आया था, उसी ओर चला गया।

तमिश्ना देखती रही—जब साधु सामनेवाली धूमिल पहाड़ियों की छाया में विलीन हो गया, तब साँय-साँय करते हुए जंगल की ओर एक बार देखकर वह अपने स्थान से उठी, और नदी की ओर चल दी।

नदी के किनारे पहुँचकर सर्दी से काँपती और सिकुड़ती हुई हीना तमिश्ना ने एक बार आकाश की ओर देखा, और फिर झम्म से पानी में कूद पड़ी। कुछ देर तक नदी में बुलबुले उठते रहे और फिर सब शांत हो गया।

उस समय अँधेरा हो गया था, और आकाश के एक छोर पर दो तारे झिलमिला उठे थे।

तीन तिनके

"रोने-चिल्लाने और खीजने से क्या होगा भला ! रात-दिन आवारा आदमी की तरह घूमते फिरना भले मानुसों का काम नहीं है। अपना दिमाग़ भी चिड़चिड़ा बना लिया है, और मुझे भी परेशान कर रक्खा है। कुछ समझ में नहीं आता कि ऐसे कब तक काम चलेगा।" समझाने के ढंग पर शांत स्वर में मा ने कहा।

चमकदार जूतों पर जो धूल इकट्ठी हो गई थी, उसे झाड़ने के लिये बारी-बारी से पाँव पटककर वंकिम ने बड़े-बड़े, रूखे बालों पर हाथ फेरा, और फटी हुई कमीज़ को चिंता के भाव से देखा; फिर कोट पहनते हुए कहा—"ये सब बातें समझने का मेरे पास समय नहीं है मा ! काम कब तक चलेगा, यह राम जाने, पर इतना मैं जानता हूँ कि जब तक जीना है, किसी-न-किसी तरह काम चलेगा ही, और जिस दिन न चलेगा, उस दिन जीवित भी न रहूँगा।"

मा ने फटे हुए लिहाफ़ को ठीक से लपेटकर खाट के पायँते रखते हुए कहा—"हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहने से कुछ न होगा, और जीने-मरने की बातें सुनकर भी मुझे क्या करना है। दो मुट्ठी अन्न हम मा-बेटी को न दे सको, तो तुम भी चले

जाओ, जहाँ इच्छा हो। एक चला गया, तो मैं कुछ न कर पाई, और तुम चले जाओगे, तो भी मैं क्या कर पाऊँगी। पर सोचने की बात यह है कि मैंने तुम लोगों को पढ़ाने-लिखाने और पालने-पोसने में जो अपना तमाम ज़ेवर बेच डाला और अपने सुख की परवा न की, उसका बदला तुम लोग मुझे यह दे रहे हो कि आज मैं साँड़-से दो लड़कों के होते हुए, बुढ़ापे में अपनी लड़की को लेकर कहीं नौकरी करूँ, कहीं भीख माँगूँ !"

दूसरी ओर मुँह फेरकर बैठते हुए बंकिम ने एक पुराना अख़बार खोलकर सामने फैलाया, और 'आवश्यकता' के कालम पर दृष्टि दौड़ाते हुए कहा—"सो मैं क्यों कहूँ कि तुम भीख माँगो या नौकरी करो, पर इस बेकारी की हालत में कहाँ से इतना लाऊँ कि घर का ख़र्च चले। बड़े भाई से तो कुछ वश चलता नहीं।"

माने चश्मा उतारकर एक ओर रख दिया, और सुई पर डोरा लपेटते हुए कहा—"जिस पर हमारा ज़ोर नहीं उससे क्यों कहूँ। एक नालायक़ निकल गया, तो क्या तुम भी नालायक़ हो जाओगे ? यह क्या मैंने पहले सोचा था ? जो अलग हो गया है, उससे क्या मतलब ? वह मेरा कोई नहीं। न मैं उसकी मां, न वह मेरा बेटा। मैं उसके आगे दो रोटियों के लिये हाथ फैलाने नहीं जाऊँगी। जिस दिन ऐसी नौबत आ जायगी, उसी दिन गोमती में डूब मरूँगी।

रही मेरी लड़की की बात, सो किसी भले आदमी को सौंप जाऊँगी, नहीं तो उसे भी साथ ले डूबूँगी।"

बंकिम अभी तक अखबार देख रहा था, अब ज़ोर से उसे बंद करके पीछे घूमा और कहा—"मर जाओगी, तो मुझ पर क्या एहसान करोगी ? नौकरी मुझसे हो न सकेगी। दोस्तों से जो रुपए उधार-सुधार मिल जाते थे, अब वे भी न मिलेंगे। ऐसे में क्या करूँ, मैं नहीं जानता। पर रोज़-रोज़ का यह काँय-कलेस मुझे पसंद नहीं है।"

मा ने गंभीर स्वर में कहा—"काँय-कलेस तो तुम्हें पसंद नहीं है, पर रोज़ सुबह चाय पीना, दिन में चार बार भोजन करना और अच्छे मकान में रहना तो पसंद है। मकान का दो महीने का किराया, दूधवाले के पाँच रुपए, लकड़ीवाले के चार रुपए और दुनिया-भर के जो क़र्ज़ चढ़े हैं, वे सब कहाँ से दूँ ? मेरे पास कुछ खत्ती तो गड़ी नहीं है; जो निकाल-निकालकर देती जाऊँ। खाते हो, तो देना भी होगा।"

बंकिम ने चिल्लाकर कहा—"कहाँ से दूँ ? कहाँ से लाऊँ ?" और तेज़ी से बाहर निकला।

मा ने कहा—"ठीक तो है, कहाँ से लाओगे ? पर बिना लाए काम भी तो न चलेगा। पेट को तो नहीं समझाया जा सकता। चलो, तीनो ज़हर खाकर सो रहें।"

वंकिम दहलीज़ में खड़ा सुन रहा था, पर वापस न लौटा। आँखें उसकी डब-डबा आई थीं। दबे पाँव बाहर चला गया।

❀ ❀ ❀

वंकिम का एक मित्र है—वीरेंद्र। यों उसे अपनी आयु के इन बीस-इक्कीस वर्षों में सैकड़ों परिचित और मुलाक़ाती मिले हैं, बहुतों को उसने दोस्त भी माना, घनिष्ठता भी बढ़ाई, पर जो वीरेंद्र है, सो दूसरे न थे। वंकिम देखता है कि अपने अन्य परिचितों से अधिक वह उसकी ओर आकृष्ट है। वीरेंद्र में क्या अनोखापन है, सो तो वह नहीं जानता, पर वह उसे चाहता सबसे ज़्यादा है। वीरेंद्र उम्र में छोटा है, विद्यार्थी है, इसलिये वंकिम उसे डाँट-डपट-कर, मार-पीटकर अपने छोटे भाई के न होने का बेजा फ़ायदा उठा लेता है।

वंकिम के एक बड़ा भाई है, पर उससे कुछ मतलब नहीं—वीरेंद्र कोई बड़ा भाई नहीं है, और उसे वंकिम मिल गया है। कैसी विडंबना है कि जिसके है, उसके नहीं है, और जिसके नहीं है, वह अचानक पा गया! वंकिम भी जैसे उसी का होकर रह गया है। भाई-भाई का रिश्ता तो ख़ैर मान लेने का है, वास्तव में तो वे लोग दोस्त हैं। देखने और समझने से दोस्ती गहरी और अटूट भी मालूम होती है।

जब वंकिम परेशान होता है, जी नहीं लगता, व्यथा-सी होती है, और उदासी अनुभव करता है, तो वीरेंद्र के अलावा

उसे अन्य किसी मित्र की भावनाओं का सहारा नहीं मिलता। वीरेंद्र भी कभी दुःखी होता है, तो उसका दुःख बंकिम के साथ से कम हो जाता है। बंकिम बेकार है, उसके सिर पर मा-बहन का भार है, और कुछ-न कुछ इज्जत का सवाल भी है। चाहे वह अपने जीवन में जिम्मेदार न हो, पर वह उन समस्याओं से विलग नहीं है, जो जीने के लिये आदमी के चारों ओर खड़ी हैं। वह अपनी जिम्मेदारियों को समझता, पर उनका अनुभव नहीं करता; व्यक्त भी नहीं करता, क्योंकि ऐसा करने से जिम्मेदारियाँ उस पर 'हावी' हो जायँगी, और फिर वह जो दुख-दर्द छिपाए रहने का प्रयत्न करता है, उसमें असफल हो जायगा, और तब उसके लिये जीते रहना असंभव हो जायगा।

वीरेंद्र भरे-पुरे परिवार का लड़का है। माता-पिता और भाई-बहनें उसके लिये स्नेह-सरिताएँ बहाते हैं। उसका ब्याह भी हो चुका है। उसके सामने बड़ी-बड़ी जिम्मेदारियाँ हैं, पर अभी वे उसे दिखाई नहीं पड़तीं, न अभी उनका भार उस पर पड़ा ही है। वह अभी विद्यार्थी है, उम्र भी उसकी अधिक नहीं है, और घर भी मध्यवर्ग से ऊँचे स्तर का है। हालाँकि खान-पान, रहन-सहन मध्यवर्ग का ही है, पर एक बड़ी जमींदारी का स्वामी वह है, जो अभी उसके हाथ में नहीं है—सब कुछ होते हुए भी उसके पास कुछ नहीं है। लेकिन बंकिम को इसकी परवा नहीं है। मन

मिले की बात है। वीरेंद्र से पैसों के लिये, सहायता पाने के लिये उसने घनिष्ठता नहीं की, और वह चूँकि उसके प्रति अधिक स्नेहमय है, इसलिये उसकी सहानुभूति और श्रद्धा वह नहीं चाहता, मैत्री और भ्रातृस्नेह ही चाहता है। वीरेंद्र उसे चाहता है, इसलिये उसकी मा, उसके पिता और भाई-बहन भी चाहते हैं। छोटे भाई-बहनों में वंकिम का मन बहल जाता है।

वंकिम आज जो भले आदमियों के वेश में पागल-सा दीखता है, सो सदा से ऐसा नहीं है। पाँच-छ महीने से वह ऐसा दुखी हो गया है, और यह दुःख अकारण नहीं है। कारण ऐसा दुःखदायी है कि वंकिम अकेला ही नहीं, उसकी मा-बहन भी परेशान हैं। भाई के अलग हो जाने से मा-बहन का भार वंकिम के ही सिर पर आ पड़ा। वंकिम—भावुक, स्वतंत्र और स्वाभिमानी वंकिम ठोकरों के बीच पड़ गया। पड़ इसलिये गया कि अब किसी का भी सहारा न रहा।

परेशानियों के संघष में वंकिम मा-बहन के साथ जीवित है। यह आश्चर्य की बात इसलिये नहीं है कि उसके पास जो जमा-पूँजी थी, वह बिकती रही। भाभी ने उसे एक अँगूठी दी थी, पहले महीने में वह बिकी। कमला नाम की एक लड़की उसे प्यार करती थी, पर आज वह इस संसार में नहीं है। अपने प्यार की स्मृति में उसने अपनी उँगली में

पहनी हुई एक अँगूठी बंकिम को पहना दी थी। दूसरे माह में गीली आँखों से देखते हुए उसने वह अँगूठी बेच दी। तीसरे माह में उसने अपना प्यारा केमरा बेच दिया। चौथे महीने में उसने अपना फ़ाउंटेनपेन बेच दिया। और, यह पाँचवाँ महीना है, जब कि दो कुरसियाँ, एक मेज़, कुछ पुस्तकों, पहनने-ओढ़ने के कपड़ों और ज़रूरत के घरेलू बरतनों के अलावा कुछ नहीं रह गया है। और, ये चीज़ें ऐसी हैं कि जो बेची नहीं जा सकतीं। इन्हीं सब संघर्षों के बीच बेचारा बंकिम पड़ा था।

वीरेंद्र ने एक दिन चुपके से बंकिम की जेब में पाँच रुपए का एक नोट डाल दिया था, पर उसे बंकिम ने वापस कर दिया। वीरेंद्र छोटा है, कमाता भी नहीं, उसकी सहायता बंकिम कैसे स्वीकार करता ?

❀ ❀ ❀

जिस तरह हमेशा परेशान होने पर बंकिम वीरेंद्र के पास पहुँच जाता है, आज भी मा से खरी-खोटी सुनकर और सुनाकर क्षुब्ध-मन वह वीरेंद्र के घर गया। वहाँ वीरेंद्र के पिताजी मिले। वह बहुत ज़िम्मेदार, दुनियादार और व्यावहारिक व्यक्ति हैं, भावुक कम हैं। उन्होंने कहा—"चीज़ों के दाम तो इतने चढ़ गए हैं कि ख़रीदने की हिम्मत नहीं होती। जब सौ-दो सौ पानेवालों का यह हाल है कि जीने के लिये परेशान हैं, तो न कमानेवालों,

बेकारों या कम पैसा पानेवालों की हालत तो और भी खराब होगी।"

वंकिम को तो इन चार-पाँच महीनों में इसका कटु अनुभव हो चुका था। वह बोला—"सो तो है ही।"

"बड़ी खराब हालत है। लूट-मार हो रही है। अब दिन-दहाड़े चोर-उचक्के फिरेंगे। भले आदमियों का रहना भी मुश्किल हो जायगा।"

"कुछ नहीं कहा जा सकता कि क्या होगा।"

"हमारी तनख्वाह एक सौ पैंतीस है, पर इसमें से भी एक पैसा नहीं बचता, बल्कि और जरूरतें बनी रहती हैं। ऐसा लगता है कि बस, मौत-ही-मौत नाचेगी सब जगह। कपड़े का भाव चौगुना है, सो भी मिलता नहीं। हमारे पास तो पुराने कोट हैं, पर वीरेंद्र के लिये कपड़े बनवाने ही हैं। कहीं सस्ता, अच्छा देखो, तो बताना।"

वंकिम ने कह दिया—"अच्छा।"

इस तरह की बातें उसके मन पर बड़ी गहरी चोटें करती हैं। उसे पिता का अभाव बड़ी तीखी और कड़ी भावनाओं के साथ खटकता है। उसका मन ऐसी बातें सुनकर रो उठता है।

वीरेंद्र के आने पर उसके पिताजी किसी कार्य से बाहर चले गए।

वंकिम देश की हालत देख रहा था। परेशानियाँ गरीबी

की व्यथा पर छाया किए हुए थीं, और बंकिम को लग रहा था कि वह संसार में सबसे अधिक ग़रीब और परेशान है। उसके सामने मकान का दो माह का किराया, महरी का मिहनताना, धोबी का ख़र्च, दूध और लकड़ी के रुपए, घर के फटे हुए कपड़े, अनाज के खाली बर्तन, अपने ख़ाली हाथ और संसार पर छाई हुई विवशता की घटाएँ उसके मस्तिष्क में नाच रही थीं।

वीरेंद्र ने कहा—"चुप क्यों हो?"

बंकिम बोला—"तुम्हीं कुछ कहो।"

"सुस्त और परेशान रहने से क्या लाभ?"

"तो मैं क्या करूँ?"

"नौकरी करो कहीं।"

"नौकरी कहीं नहीं मिलती।"

"मिलिटरी में ही कर लो।"

"मैं तुमसे बीस बार कह चुका हूँ कि मुझसे नौकरी न होगी। तुम ऐसी बातें करके मुझे परेशान मत किया करो।"

"तो फिर क्या करोगे?"

"जहन्नुम में जाऊँगा, बस।"

"फिर वही बात।"

"अच्छा, छोड़ो यह बात, अगर मान लो कि मैं मर जाऊँ, या कहीं भाग जाऊँ, तो तुम मेरी मा-बहन की देख-भाल करोगे?"

"ऐसी बात सुनना या ऐसी बातों का जवाब देना मैं पसंद नहीं करता। तुम ख़ुद तो पागल हो ही, मुझे भी पागल बनाते हो।"

मुस्कराते हुए बंकिम बोला—"मैं सचमुच थोड़े ही कह रहा हूँ, मान लेने की बात है। किसी दूसरे की ही बात हो, तो ऐसी हालत में दोस्त ही सहायता करते हैं।"

वीरेंद्र चुप रहा। उस समय उसकी आँखें पानी से भर गई थीं। एक असमर्थ बालक की तरह उसने बंकिम के चेहरे की ओर अपनी धुँधली आँखों से देखा।

बंकिम ने अपनी बात का जवाब पाया हो या न पाया हो, पर प्यार से उसने वीरेंद्र के कंधे पर हाथ की थपकी देकर कहा—"पगले!"

मेज़ के एक कोने में घास के तीन तिनके पड़े थे। बंकिम ने फूँक मारी, तो एक उड़कर नीचे गिर पड़ा। उस समय उसके चेहरे के भाव बदल गए। उसने कहा—"देखो वीरेंद्र, ये तीन तिनके थे। मैंने फूँक मारी, एक उड़ गया—दो रह गए हैं। इन्हें अगर मैं फूँक दूँ, तो ये भी उड़ जायँगे, नहीं तो हवा से उड़ जायँगे, या सुबह सफ़ाई होने पर उड़ जायँगे, और अगर किसी चीज़ से ढँक दूँ, तो न उड़ेंगे। हर चीज़ को सहारा चाहिए। मैं हूँ मान लो एक तिनका, मैं उड़ गया, तो दो तिनके, मा-बहन, रह जायँगे, और उन्हें सहारे की ज़रूरत होगी, जिस तरह इन दो तिनकों को रोकने

के लिये इन्हें किसी चीज़ से दबाना ज़रूरी है। और नहीं तो"—तब फूँक मारकर बंकिम ने मेज़ पर पड़े हुए वे दो तिनके भी उड़ा दिए और कहा—"जैसे ये तिनके उड़ गए, दुनिया की कठोरता से बनी बयार मेरी मा-बहन को भी उड़ा ले जायगी।"—फिर वह ज़ोर से हँस पड़ा।

वीरेंद्र ने कहा—"या तो तुम्हारा दिमाग़ ख़राब है या अपनी काहिली को छिपाने के लिये तुम दार्शनिक बनने का स्वाँग भरते हो।"

"ख़ैर", बंकिम ने कहा—"और क्या हाल है ?"

"ठीक है सब।" धीरे से वीरेंद्र बोला, "अभी खाना बना जाता है, खाकर जाना।"

"अच्छा" बंकिम ने कह दिया।

❀ ❀ ❀

तीसरे दिन जब वीरेंद्र कॉलेज से लौटा, तो उसे लिफ़ाफ़े में बंद बंकिम का एक पत्र मिला। लिखा था—"तीन तिनके थे, एक उड़ गया।" हवा के तेज़ झोंके को सह न सका। दो तिनके बचे हैं, वे न उड़ने चाहिए।"

पत्र को जेब में रखकर वीरेंद्र हक्का-बक्का-सा बंकिम के घर की ओर दौड़ा।

दीवार का छेद

मजदूर को पैसे देकर बिदा करने के बाद कैलास ने सामान को तरतीब से रखना शुरू किया। मकान के नीचे का हिस्सा सीमेंट का गोदाम है, जिसका दरवाजा पीछे है। ऊपर के हिस्से में दो कमरे हैं, सामने की छत पर रसोईघर वगैरह, एक ही लाइन में बने हुए हैं। उस ओर नीम का पेड़ है, जिसके कारण शाम को, जब सूरज पश्चिम की ओर झुकने लगता है, छत पर छाया हो जाती है। कैलास अकेला आदमी है, इतनी जगह उसके लिये पर्याप्त है। भोजन का प्रबंध किसी होटल में कर आया है। नया मकान है, किराया भी अधिक नहीं, सात रुपए है।

उसने बक्स खोला, और बापू की तस्वीर निकालकर मेज पर रख दी। फिर छत पर पड़ा हुआ ईंट का टुकड़ा उठा लाया, और कील को हाथ में लेकर इधर-उधर, दीवार की ओर देखने लगा कि किधर तस्वीर लगाई जाय। फिर उसने सोचा कि खाट इधर बिछेगी, इसलिये सामने तस्वीर लगाए, जो सुबह उठते ही निगाह पड़ सके।

जहाँ उसने कील ठोकने के लिये जगह चुनी थी, वहाँ पैसे के बराबर एक गोल छेद था। कील और ईंट को वहीं रखकर वह दीवार के पास पहुँचा, और छेद से आँख भिड़ा-

कर उस ओर देखने लगा—सामने टिन-शेड पर उसकी दृष्टि पड़ी—चूल्हा बना हुआ था, एक छोटी-सी चौकी पर मँजे हुए बरतन क़रीने से सजे हुए रक्खे थे। दीवार से लगी एक सिल रक्खी हुई थी, उससे सटा हुआ छोट-सा लोढ़ा रक्खा था, जिस पर पिसी हुई हल्दी की एक गोली रक्खी थी। खंभे के पास ही एक गमला था, जिसमें ताज़े फूलों की माला पहने हुए तुलसी-वृक्ष खड़ा था। और आगे गीली-सी हरी धोती रँगी दिखाई पड़ी, और फिर कोशिश करने पर भी कुछ न दीखा। छेद की सीमा अधिक न थी, लेकिन कैलास खड़ा रहा, शायद और कुछ दीख जाय। कुछ देर बाद जब उसने वहाँ से आँख हटाई, तो देखा कि दीवार इकहरी ईंट की बनी हुई है।

फिर उसने कील वहाँ न ठोकी, और मेज़ को दीवार के सहारे भिड़ाकर बापू की तस्वीर भी उसी पर रख दी, और आप गंभीर होकर कुरसी पर बैठ गया।

कमरे में चारों ओर, किताबें, कपड़े आदि बेतरतीब पड़ा हुआ सामान देखकर वह कुछ देर बाद कुरसी से उठा और एक बार फिर उस छेद में देखकर सब चीज़ों को ठीक-ठिकाने रखने लगा।

सामान रखने के बाद, एक कुरसी और किताब लेकर वह खुली छत पर जा बैठा। नीम की पत्तियों से छन-छन-कर हवा आ रही थी।

थोड़ी देर तक गुनगुनाने के बाद कैलास ने किताब खोली और पढ़ने लगा। लेकिन थोड़ी ही देर बाद पढ़ने से उसका मन उचट गया, और वह कपड़े पहन, कमरे का दरवाजा बंद करके नीचे उतरा, जीने के द्वार पर ताला लगाकर नारायण के घर की ओर चल दिया।

नारायण अच्छा-खासा, खाने-पहननेवाला युवक है—स्वर्गीय पिता के रुपए पर गुलछर्रे उड़ाता है। कैलास और नारायण में पहले ही सिनेमा जाने की बात तय हो गई थी।

रास्ते में कैलास ने नारायण से पूछा—"ये मेरे पड़ोस में किस ढंग के आदमी रहते हैं?"

इस शहर में कैलास का परिचय केवल नारायण से ही है। उसी ने यह मकान कैलास को बतलाया था। उसकी बात सुनकर नारायण ने आश्चर्य से पूछा—"क्या बात हुई?"

मुस्कराके कैलास ने कहा—"बात तो कुछ नहीं हुई; यों ही पूछा—अपने पड़ोसियों के बारे में तो जानना ही चाहिए।"

"सब काम-धंधेवाले भलेमानुस हैं। और फिर तुम्हें क्या, कोई लफंगा, उठाईगीरा होगा, तो तुम्हारा क्या बिगाड़ लेगा—न तुम्हारे बीवी है, और न तुम्हारे पास रुपया है।"

"इतना ही जानने से तो काम नहीं चल सकता।"

"देखो, तुम्हारे मकान के सामने चुंगी के हेडक्लर्क हैं, पीछेवाले मकान में एक नौजवान टिकट-चेकर रहता है।

दाहनी ओर के मकान में भी कोई सरकारी नौकर ही रहते हैं। और बाईं ओर तो मकान-मालिक का ही घर है, जिसका सीमेंट का गोदाम तुम्हारे मकान के नीचे है। वह बहुत रईस आदमी है।"

"और ?"

"और....और सामने सड़क के मोड़ पर बंबा है, उसके सामने किसी मास्टर का घर है, मोड़ पर कोई पंडित महाशय रहते हैं और आगे चलकर।"

कैलास ने नारायण की ओर घूमकर देखा, तो वह चुप हो गया।

सिनेमा में बैठे-बैठे भी कैलास बार-बार सोचता कि उसके कमरे की दीवार में एक छेद है, उस पार कोई रहता है, रसोई-घर में कैसे चमकते हुए बरतन रक्खे थे! हरे रंग की एक जनानी धोती सूख रही थी। वह मकान उसके पिछवाड़े पड़ता है, रेलवे का टिकट-चेकर रहता है उसमें....।

उसने नारायण से पूछा—"क्यों जी, हमारे सामने तुमने जो चुंगी का क्लर्क बताया है, उसकी उमर क्या है ?"

"बूढ़ा है यार!"

"और मोड़वाले मास्टर की ?"

"उन्हें भी बूढ़ा ही समझो।"

"और वह टिकट-चेकर है, उसकी ?" कैलास अपनी बात पर आया।

"वह तो छोकरा है।"

"कौन-कौन हैं उसके यहाँ ?"

"मैं कोई शहर-भर की मर्दुमशुमारी करता फिरता हूँ।"

"मैंने सोचा, मेरी ही तरह अकेला हो, तो परिचय कर लूँ।"

"अकेला तो नहीं है।"

तभी घंटी बज गई, और हॉल में चमकते हुए बिजली के लट्टू बुझ गए।

नारायण ने कहा—"लो, खेल शुरू हो गया।"

कैलास चुपचाप बैठा रहा।

खेल समाप्त होने पर कैलास बराबर चाहता रहा कि उस टिकट-चेकर के परिवार की बात पूछे, पर संकोच-वश न पूछ पाता। अंत में, बड़ी देर बाद, पूछा—"मुझसे पहले इस मकान में कौन रहता था ?"

"तुम्हारी ही तरह एक खूब तंदुरुस्त लड़का रहता था। कॉलेज के लड़के उसे 'ग्रीक-सोल्जर' कहा करते थे। मेरी उससे क़तई दोस्ती नहीं थी। मुझसे कहता था—स्वास्थ्य सुधारो! तंदुरुस्ती बनाओ। मुझे समझाने चला बदमाश कहीं का।"

"क्या करता था ?"

"कहीं मास्टर था। प्राइवेट बी० ए० करने आया था। चला गया, अच्छा हुआ।"

"अकेला था ?"

"हाँ।"

"तुम उससे इतने नाराज़ क्यों हो ?"

"नाराज़ क्या ? मुझे समझाता था, जूनियर समझता था। अगर मैं इतने सालों तक फ़ेल न होता, तो अब तक कब का आई० सी० एस्० हो चुकता।"

"और यह टिकट-चेकर ? यह कैसा आदमी है।"

"कभी बात नहीं हुई। पर देखने में तो भला लगता है। लेकिन इसकी बीबी बहुत सुंदर है, कभी मौक़ा पड़े, तो देखना।"

"अच्छा !"

"हाँ, और उसकी एक साली भी है, वह भी अपनी बहन की ही तरह है। अभी कुँआरी है।"

कैलास को और कुछ जानने की इच्छा न थी, कहा—"आज का खेल तो कुछ जँचा नहीं।"

"तभी तो कहता हूँ, इँगलिश पिक्चर्स देखा करो।"

लालटेन जलाकर कैलास ने पढ़ने के लिये एक मासिक पत्रिका उठाई कि उस छेद के आकर्षण ने उसे बुलाया। उसने देखा कि गोलाई में मुड़ा हुआ एक काग़ज़ उस छेद में अटका हुआ है। आश्चर्यान्वित होकर उसने वह काग़ज़ निकाल लिया, और उस ओर झाँककर देखा कि अंधकार छाया हुआ है।

मेज़ पर लालटेन रख, काग़ज़ खोलकर पढ़ने लगा। पैंसिल से ज़नाने हाथ के राइटिंग में लिखा था—

"मेरे प्राण !

मैं अभी आई, तो जीजी की निगाह बचाकर सबसे पहले तुम्हारे दर्शनों की इच्छा हुई। पर तुम नहीं थे। गाँव में मा कहने लगी थीं कि हाईस्कूल कर लिया है, आगे पढ़ना बेकार है ; लेकिन बहुत जिद करके लौटी हूँ। शायद पढ़ाई अब न हो सके। एक हफ़्ते तुमसे अलग रही, सो लगा, जैसे प्राण निकलने लगे हैं। तुम छुट्टियों-भर यहाँ बने रहे, केवल मेरे लिये, तो मैं भी मा का क्रोध लेकर केवल तुम्हारे ही लिये लौट आई हूँ। आते ही पत्र का उत्तर लिखना। तुम्हें तकलीफ़ तो नहीं रही कुछ ? जीजा से परिचय किया या नहीं ? मेरा जी गाँव में बिलकुल नहीं लगा। तुम्हारी ही याद आती रही।

तुम्हारी, बसंती"

कैलास सब कुछ समझ गया, लेकिन एक ओर जहाँ उसके मन में कसक हुई कि एक जवान लड़की का प्रेम-पत्र उसके हाथ में है, वहाँ दूसरी ओर यह सोचकर कि क्या करना चाहिए, उसे चिंता हुई। बड़ी देर तक बैठा-बैठा सोचता रहा, फिर बिस्तर बिछाया और लालटेन धीमी करके लेट रहा।

जब पड़ोस की किसी घड़ी ने दस का घंटा बजाया, तब उसे लगा कि किसी की पद-चाप दीवार के पास आकर रुकी, फिर, चूड़ियों की आवाज़ और उस छेद में कुछ खड़-खड़ाहट हुई। कैलास साँस रोककर पड़ा रहा। थोड़ी देर तक वैसी ही आवाज होती रही, फिर जैसे आनेवाली चली गई।

वह धीरे से उठा, और छेद के पास गया। कागज की मुड़ी हुई चिट उठाकर मेज के पास कोने में गया कि अगर कोई छेद से देखे, तो कुछ दिखाई न पड़े। लालटेन भी धीमी ही रहने दी, और ध्यान से उस परचे को पढ़ने लगा—इस बार न तो संबोधन था और न नीचे किसी का नाम, लेकिन पेंसिल से उसी हस्तलिपि में लिखा था—

"बड़े निष्ठुर हो तुम! इतनी बार देख गई, पर जवाब ही नहीं दिया। क्या रूठ गए हो? पर मैं तो एक हफ़्ते के लिये तुमसे पूछकर गई थी। तुम तो पड़े सो रहे हो, पर मुझे रात-भर नींद नहीं आएगी। सुबह जब जागो, तो सबसे पहले मुझे पत्र लिखना, और कल शाम को कहाँ मिलोगे, यह भी बताना।"

कैलास का कलेजा धुक्-पुक् करने लगा। यह कैसा बिनमाँगा रोमांस देखने और समझने को मिल रहा है? यह युवती बसंती जिसे यह पत्र प्रेम-विह्वल होकर लिख रही है, वह निष्ठुर यों बिना कहे-सुने क्यों उसे ठुकरा गया? अब वह उसे किस तरह समझाए? क्या करे?

वह रात-भर जागता रहा। बार-बार ये ही प्रश्न उसके मस्तिष्क से टकराने लगे। बार-बार वह उस मास्टर को कोसने लगा, जो बगल के मकान में रहनेवाली इस लड़की को ठुकराकर चला गया है। शायद यह लड़की टिकट-चेकर की साली ही है। कैसी छटपटाहट है, उसके मन में! ज़रूर उसे

भी रात-भर नींद न आई होगी। यह सोचकर कि उसका प्रियतम, जिसे नारायण 'ग्रीक-सोल्जर' कहता है, उससे नाराज़ है, वह रात-भर रोती रही होगी !

उसे किस तरह बताया जाय कि वह उसे छलकर यहाँ से चला गया है। अब शायद आए भी नहीं। आया भी, तो पाना ज़रूर मुश्किल हो जायगा। और....और....।

सुबह जब चार बज चुके, तो उसे नींद आ गई, और आँख खुली, तो देखा, सात बजे हैं।

झटपट उठा, तो सबसे पहले उसकी आँखें उस छेद की ओर गईं, तभी एक चमकती हुई आँख उस ओर से हट गई, और चूड़ियों की आवाज़ झनझनाकर विलीन हो गई। आश्चर्य-चकित कैलास वैसा ही बैठा रह गया।

देखा कि छेद के नीचे, फ़र्श पर एक चिट पड़ी है। एक-एक रात में तीन-तीन प्रेम-पत्र ! जीवन के इन इक्कीस सालों में उसने कभी यह कल्पना नहीं की थी कि किसी दूसरे के नाम लिखे हुए एक ही लड़की के तीन पत्र, एक रात में ही, उसे मिल सकेंगे।

उसने वह चिट उठाकर पढ़ी—"तुम इतने निठुर बनोगे, तो कैसे काम चलेगा ? सुबह से तीन बार आ चुकी हूँ। तुम चादर ताने सो ही रहे हो। जागते ही जवाब दो। मैं चौके में हूँ।"

अब पहली बार निश्चिंत हो, मुस्कराकर उसने वह चिट

भी जेब में रक्खी, और छेद की ओर गया। पर वह उधर से बंद हो गया था। तब वह बाहर निकला।

तीन दिन तक सब शांत रहा। कैलास सोचता रहा कि बसंती को वही एक पत्र लिखे। उस मास्टर को तो उसे भुलाना ही पड़ेगा। जब वह उसे ठुकरा गया है, तो फिर बसंती ही उसे कब तक भला याद रख सकेगी? लेकिन ख़तों के आदान-प्रदान का साधन वह छेद तो उधर से ईंट ठोककर बंद कर दिया गया है। पत्र कैसे भेजा जाय?

शायद बसंती ने उसे देख लिया है, तभी लज्जा, क्षोभ और दुख के कारण इस मकान से नाता तोड़ लिया है।

जिस दिन वह छेद बंद हुआ था, उस दिन कैलास ने सोचा था कि रात को शायद फिर खुल जाए। लेकिन जब न खुला, तो उसके मन में बड़ी उदासी व्याप गई।

जब लौटकर आया, तो देखा कि छेद खुला था, और एक चिट उसी तरह मुड़ी हुई उसमें अटकी थी। लिखा था—

"मैं आपके पाँव छूकर प्रार्थना करती हूँ कि जो ख़त पिछले दिनों मैंने भेजे हैं, वे अभी वापस कर दें। मुझसे भूल हो गई। मैं यह नहीं जानती थी कि आप इस मकान में आ गए हैं।

आपकी बहन"

पहले कैलास ने सोचा कि बसंती को थोड़ा तंग करे। चकल्लस ही रहेगी! फिर उस पत्र को कई बार पढ़ा, और पेंसिल से लिखे हुए अक्षर उसके हृदय में छपते गए।

उसने छेद में झाँककर देखा, रसोई-घर में एक युवती चुपचाप घुटनों पर ठोढ़ी रक्खे बैठी है। बहुत शांति और नीरवता उसके सुंदर चेहरे पर छाई हुई है। उस दिन प्रातःकाल छेद पर जिस आँख को उसने देखा था, वैसी ही बड़ी-बड़ी आँखें उसे दिखाई दीं।

कैलास को बड़ी व्यथा मालूम हुई। उसने सूटकेस से तीनों पत्र निकाले, और अपने नाम लिखे गए पत्र के साथ लपेटकर, छेद में डाल, पेंसिल से खिसकाकर, उस ओर गिरा दिए, और चुपचाप घर से बाहर निकल गया।

रात-भर ग़ायब रहा। सुबह आया, तो सामान लेकर चल दिया। मकान छोड़ने से पहले ईंट के टुकड़ों से उस छेद को उसने अच्छी तरह बंद कर दिया, और ऊपर से मिट्टी थोप दी, ताकि भविष्य में कहीं कोई दूसरा 'ग्रीक सोल्जर' उस नारी की भावनाओं के साथ खिलवाड़ न कर सके।

बहुत दिन बाद नारायण ने प्रसंग-वश बताया कि टिकट-चेकर का तबादला हो गया है।

कैलास को उस मकान के बीच की दीवार का वह छेद हमेशा याद रहेगा। वह चाहता है कि एक बार उस बंद छेद को और देख आए, जिसमें होकर दो प्रेमियों के संदेश आया-जाया करते थे।

बीती बातें

अरुण खाट पर लेटा-लेटा सोच रहा है कि एक दिन और भी वह बीमार पड़ गया था, उस दिन उसकी हालत कितनी खराब हो गई थी। वह स्टूल पर रक्खा हुआ पानी का गिलास उठाने के लिये कितना प्रयत्न कर रहा था; लेकिन ज्यों ही जरा करवट लेता था, लगता था, जैसे सिर फटा जा रहा हो। उस दिन लापरवाही के कारण छत पर रक्खी हुई ईंट उसके सिर पर गिर गई थी, और .खून से भरा माथा पोंछकर जब उसके चाचा ने पट्टी बाँध दी थी, तब उसकी आँखों के सामने अँधेरा-सा छा गया था। बेहोश तो नहीं हुआ था, लेकिन बेहोशी से कम भी नहीं कही जा सकती थी, और दोपहर तक उसे बुखार भी आ गया था। चाचा दूध और पानी के गिलास स्टूल पर रखकर अपने काम पर चले गए थे; और जब उसे प्यास लगी थी, तब पीड़ा के कारण उससे गिलास उठाते न बना था। फिर बुखार का कष्ट और चोट की पीड़ा को भूलने का प्रयत्न करके, सूखे ओठों पर जीभ फेरकर छत की ओर देखने लगा था। फिर कंबल ओढ़कर आँखें मीच ली थीं। पीड़ा के कारण नींद नहीं आ रही थी, और चेहरे पर कष्ट के भाव उन रेखाओं

के अंकित होने के कारण साफ़ दृष्टिगोचर हो रहे थे, जो यदा-कदा कराहते समय पड़ जाती थीं।

जब उसे लगा कि कमरे में एक छाया-सी आकर उसके पास पड़ रही है, तब आँखें खोलकर उसने देखा था कि सरोजिनी सामने खड़ी थी। उसके चेहरे पर करुणा थी, और वह दयार्द्र भाव से उसकी ओर देख रही थी।

सरोजिनी बग़लवाले मकान में रहती है। अरुण उसे पढ़ाया करता था। एक बार सरोजिनी के पिताजी अपनी ज़मींदारी का प्रबंध करने चले गए थे। उनके जाने के कुछ दिन बाद ही गरमियों की लंबी छुट्टियाँ हो गईं और पिता का पत्र आने पर अरुण घर चला गया था। वह अपनी पत्नी को प्यार करता है। उसके साथ इतने दिन का बिछुड़ा अरुण गरमी की छुट्टियों में गाँव के किनारे बहनेवाली नदी के पुल पर बैठकर घंटों बातें किया करता था। वह कहती थी कि तुम मुझे भी साथ ले चलो। गाँव में अकेले मन नहीं लगता। अरुण उसे समझाता था। कहता था कि इस साल इम्तहान पास होते ही कहीं नौकरी कर लेगा, तब उसे बुला लेगा। उसकी पत्नी कहती थी कि वह उसकी याद में बेचैन रहती है। अकेले उसकी तबियत इस गाँव में नहीं लगती। सब लड़कियाँ अपने पति के साथ सुख से रहती हैं। अरुण के बिना इस एकांत में शून्य एकाकीपन से घबरा उठी है। किसी चीज़ की ज़रूरत होती है, तो मन मारकर

बैठी रहती है, किसी से कह नहीं पाती—यदि वह उसके साथ रहे, तो कोई तकलीफ़ न हो।

और एक दिन अरुण को अकस्मात् सरोजिनी की मा का पत्र मिला। अरुण को कभी यह आशा न थी कि उनका पत्र उसे मिलेगा। सरोजिनी की मा ने लिखा था कि अरुण के जाने से उन्हें बड़ी तकलीफ़ है। सरोजिनी के पिता उन लोगों को उसी के सहारे छोड़ गए थे, और वह इतने दिन से गाँव में रह रहा है। उन लोगों की सुधि भी बिसार दी। सरोजिनी की पढ़ाई में भी बड़ा हर्ज हो रहा है। वह कृपा कर उसे पढ़ा देता था। जब वह अपने दर्जे में बीमारी के कारण पिछड़ गई थी, तब फिर से उसकी पढ़ाई ठीक हो गई थी, लेकिन अरुण के जाते ही वह पढ़ना-लिखना छोड़कर बैठ रही है। घर में कोई बीमार होता है, किसी चीज़ की ज़रूरत होती है, तो मुहल्लेवालों का मुँह ताकना पड़ता है। रात को अकेले बड़ा डर लगता है, यह भी नहीं कि किसी को पुकार लें। सो अरुण को चाहिए कि वह कृपा कर चला आए, तो उन्हें बड़ा सहारा मिले। वैसे उनका अरुण पर कोई ज़ोर नहीं है। फिर भी जब वह उनके साथ-साथ अपनेपन से पेश आता है, तो उसी से कहा जायगा। और, सरोजिनी के पिता से भी उसने कह दिया था कि वह कुछ चिंता न करें, वह उन लोगों को कोई तकलीफ़ न होने देगा। इसीलिये वह समझती हैं कि अरुण

का यह कर्तव्य है कि वह उन लोगों को इतने दिन अकेला छोड़कर न रहे, और उनके दुख-सुख की खोज-खबर तो ले ही।

उस दिन अरुण बहुत रात गए तक सरोजिनी और उसकी मा के बारे में ही सोचता रहा था, और सुबह उठते ही, पहली गाड़ी से, शहर चला गया था। सरोजिनी और उसकी मा उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुई थीं।

उस दिन जब अरुण के सिर में चोट आ गई थी, तब सरोजिनी चुपचाप उसके पास आ गई थी। सामने खड़ी-खड़ी दीन-भाव से देखती रही थी, तब अरुण ने कराहते हुए धीरे से कहा था कि उसे प्यास लगी है, और सरोजिनी ने शीघ्र ही उसे पानी पिलाया था। फिर अरुण के कहने से वह उसी के पास चारपाई पर बैठ गई थी। पहले तो खड़ी रही थी, फिर जमीन पर बैठने लगी थी, और जब अरुण ने बहुत जिद की थी, तब वह खाट पर बैठी थी। पढ़ाई की, घर की व्यवस्था की और न-जाने कितनी बातें उनमें होती रही थीं। जाने कब और कैसे अरुण के हाथों में सरोजिनी का हाथ आ गया था। जब उसे उस क्षण की याद आती है, तो आज भी आश्चर्य होता है। उस दिन सरोजिनी का हाथ ही उसके हाथों में नहीं आया था, वह स्वयं भी उसके मन में समा गई थी। फिर वह चली गई थी। जाते-जाते कह गई थी कि उसे अरुण की बड़ी चिंता है। अरुण उस समय निहाल हो गया था। उस समय उसे पत्नी की याद नहीं आ

रही थी, वह तो सरोजनी के स्पर्श का आनंद याद करके सुखी हो रहा था। जाने कैसे सरोजिनी उसके मन में आ बसी थी, और उस दिन उसे अपने प्राणों के पास पाकर वह सोच रहा था कि जीवन में पहली बार वह उस अनोखे आनंद को प्राप्त कर सका है। फिर सरोजिनी रोज़ ही आती रही। उसकी देख-भाल, दवा-दारू का प्रबंध, सभी वह करती और ऐसा करने में अरुण देखता कि उसके चेहरे पर उल्लास की रेखाएँ खेला करती थीं।

सरोजिनी की सेवा-शुश्रूषा ने अरुण को शीघ्र ही स्वास्थ्य-लाभ पहुँचाया, और थोड़े ही दिनों में अरुण चंगा हो गया। वह फिर सरोजिनी के यहाँ जाने लगा। उसे और उसके छोटे भाइयों को पढ़ाता। घर का काम-काज भी कर देता। बहुत रात गए तक सरोजिनी उसके पास बैठी रहती थी। मा समझती होंगी कि वह पढ़ रही है, लेकिन अरुण के पास सरोजिनी का अधिक समय देना केवल इसलिये था कि वे दोनो ही एक दूसरे को प्यार करने लगे थे। घंटों बैठकर अपने मन की बातें एक दूसरे से किया करते और न-जाने मीठे स्वप्नों के किस लोक में मन के प्रेम-गीत गाने के लिये बेचैन हो उठते।

अरुण जानता था कि वह विवाहित है। उसकी पत्नी सुंदर है, और वह अरुण को प्रेम करती है। इसलिये अरुण का कर्तव्य है कि वह किसी अन्य नारी को प्रेम करके पाप

का भागी न बने। उसके लिये संसार में यदि कोई नारी है, तो वह उसकी पत्नी ही है। और, उसका यह नैतिक कर्त्तव्य है कि पत्नी के ही लिये उसे अपना जीवन बिताना है। पत्नी से अलग हटकर वह जिस नई धारा में बह रहा था, वह तो उसके पतन की राह थी। और, उस हालत में वह अपनी उस पत्नी के साथ विश्वासघात कर रहा था, जिसके साथ उसका ब्याह हुआ है। ऐसे विचार अक्सर उसके मन में आते और वह सिहर उठता, लेकिन शांत ही रहता, और कभी यह प्रयत्न न करता कि सरोजिनी से दूर रहे।

सरोजिनी भी जानती थी कि वह अरुण को प्यार करके एक अन्य स्त्री के साथ विश्वासघात कर रही है। वह जानती थी कि अरुण को प्यार करने से उसकी पत्नी द्वारा बनाए गए जाग्रत्-स्वप्नों के महल गिर पड़ेंगे। वह नारी जिस अरुण की पूजा करती है, जिस अरुण के चरणों में अपने प्राणों का अर्घ्य चढ़ा रही है, उसकी पूजा का सामान, उसकी श्रद्धा और प्रेम के भावों को वह बीच ही में नष्ट कर रही है। लेकिन वह यह सब जानते हुए भी विवश रही। कुछ कर न सकी।

जब सरोजिनी के पिता जमींदारी से वापस आए, तो उन्हें पड़ोसियों द्वारा अरुण और सरोजिनी के प्रेम-संबंध का पता लगा। उन्होंने स्वयं भी उन लोगों को प्रेम-वार्ता करते देखा, और अपना माथा ठोककर रह

गए। और, एक दिन वह सबको लेकर गाँव चले गए।

बहुत दिनों तक अरुण को सरोजिनी के कोई समाचार नहीं मिले। उस वर्ष वह परीक्षा में भी पास न हो सका। एक दिन अकस्मात् सरोजिनी का पत्र उसे मिला था। सरोजिनी ने दो लाइनों में लिखा था कि वह उसे भूल जाय, क्योंकि उसकी शादी हो गई थी। अरुण ने वह पत्र पढ़कर लंबी साँस खींची थी। उसके लिये संसार सूना हो गया था।

आज वह खाट पर पड़ा-पड़ा बीती बातें सोच रहा है। वह सोचता है कि जब एक बार बीमार हुआ था, तब सरोजिनी उसके लिये कितना करती थी। और, आज दर्द के मारे सिर फटा जा रहा है, बुखार के कारण शरीर जल रहा है, लेकिन कोई ऐसा उसे नहीं दीखता, जो सांत्वना दे, गिलास उठाकर पानी पिलाए, या ज़रा सिर दबा दे। इसीलिये वह बीती बातें सोच-सोचकर शांति का अनुभव कर रहा है। सोचता है—एक सरोजिनी थी, एक अरुण था। दोनो एक दूसरे को प्यार करते थे। अरुण बीमार होता था, तब सरोजिनी उसकी सेवा करती थी, उसे धैर्य बँधाती थी। फिर वह सरोजिनी उससे दूर भाग गई। अरुण अकेला रह गया। आज वह यही सब सोच रहा है। आँखों से आँसू ढुलक रहे हैं, और वह हँस भी रहा है। हृदय की प्यास कैसी विचित्र होती है, जो बुझाने पर भी नहीं बुझ पाती।

फ़रार

कमरे के सामनेवाले छज्जे पर बैठकर मीरा अँगीठी में आग सुलगाने का प्रयत्न कर रही थी। कई दिन से पानी बरसने के कारण कोयले सील गए थे, और उस समय भी हवा बंद होने के कारण आग जल नहीं रही थी। कई बार तेल डालकर उसने दियासलाई लगाई, पर आग जली नहीं। तेल एक बार लपटकर जल जाता, या फिर सफ़ेद धुआँ ही गहरा होकर सामने के नीम की पत्तियों के बीच में उड़ जाता।

मीरा अपने प्रयत्न में सफल न हुई, तो धोती का पल्ला खींचकर चेहरे पर बिखरा हुआ पसीना और धुएँ के कारण बहते हुए आँसू पोछने लगी। फिर अँगीठी उठाकर अंदर चली गई, और उसे दालान के एक कोने में रखकर, स्वयं कमरे में जाकर खरहरे पलंग पर ही धम्म से पड़ रही। फिर आँखों पर हाथ रख लिया, और धीरे-धीरे रोने लगी।

कई दिन से आकाश पर बादल छाए हुए थे। धीरे-धीरे पानी भी बरस जाता था, पर सूर्य भगवान् के दर्शन नहीं हुए थे। साँझ होते ही अँधेरा गहरा हो जाता था। थोड़ी

देर तक मीरा वैसे ही पड़ी रही; फिर धीरे से उठी और आँसू पोंछ लिए। आँखें उसकी खूब लाल हो गई थीं। फिर वह दालान में आई, और लालटेन साफ़ करके जला दी। तब एक बार वह अँगीठी के पास फिर गई, और पहलेवाले कोयले निकालकर वहीं कोने में डाल दिए, और पास पड़ा हुआ अख़बार उठाया, दो-तीन पन्ने फाड़कर नीचेवाले हिस्से में रख दिए। दूसरे कोयले फिर भर दिए। काग़ज़ जलकर रह गए। कोयलों के किनारे ज़रा लाल हुए और फिर बुझ गए।

मीरा अपनी इस असफलता से खीझ उठी थी। फिर वह चुपचाप बैठी रही, और सामने पड़े पुराने अख़बार को पढ़ने लगी। तभी पड़ोस के किसी मकान की घड़ी ने सात बजा दिए। वह खिन्न मन से उठी, और लालटेन लेकर कमरे में जा पहुँची।

कमरा बहुत बड़ा नहीं है। दो पलंग उसमें आ सकते हैं, लेकिन वहाँ एक ही पलंग पड़ा हुआ है। सिरहाने बिस्तर रक्खा हुआ है। सामने पड़े स्टूल पर लालटेन रखकर उसने बिस्तर बिछा दिया। तकिए दो थे। ऊनी चादर को एक बार फटकारकर पाँयते रख दिया, और तब स्वयं भी करवट लेकर लेट रही। पाँव नीचे ही लटकाए थी। फिर आँखें मींचकर जाने क्या-क्या सोचती रही।

जब बाहर की कुंडी खटकी, तब वह रोज़ की ही तरह

शीघ्रता से द्वार खोलने पहुँच गई। पति के हाथ में रोज़ की ही तरह साग-तरकारी से भरा झोला था। उसे लेकर उसने दरवाज़ा बंद कर लिया, और पति के पीछे-पीछे कमरे में पहुँची। पति थककर खाट पर बैठ गए थे, और उन्होंने कोट उतारकर वहीं डाल दिया था।

कोट खूँटी पर टाँगते हुए मीरा बोली—"तुम जो रोज़ इतनी देर कर लेते हो, सो मेरी समझ में नहीं आता कि इस तरह तुम कितने दिन तक और स्वस्थ रह सकोगे?"

दिवाकर ने कहा—"वक़्त से आऊँ, तो बीस रुपए कम हो जायँ।"

"तो नौकरी के तीस क्या कम हैं, जो दो-दो ट्यूशनें और कर ली हैं? तुम्हारे लिये स्वास्थ्य कुछ भी नहीं है—हर वक़्त रुपए की ही चिंता में लगे रहते हो।" मीरा ने कहा।

"रुपए की बड़ी ज़रूरत है, मीरा! अच्छा, तुम कुछ खाने को तो लाओ।" अख़बार उठाकर दिवाकर ने कहा।

मीरा ने सहज स्वाभाविक करुण स्वर में कहा—"इस पानी के मारे नाक में दम है—सारे कोयले तो भीग गए हैं—इस समय कुछ भी नहीं बना सकी। सुबह का है, खाना चाहो, तो नाश्ते के साथ खा लो, या फिर बाज़ार से ले आओ।"

"नहीं, बाज़ार से लाने की कोई ज़रूरत नहीं, तुम सुबह

का ही कुछ दे दो। और, नाश्ते में से दो-चार लड्डू या मठरियाँ हों, तो साथ में रख देना।" दिवाकर ने कहा।

"कहते क्या हो— मैं क्या भूल जाती हूँ?" कहकर मीरा रसोई-घर में चली गई।

❀ ❀ ❀

दस बज चुके थे। दिवाकर सो गया था, लेकिन मीरा लेटी-लेटी कोई पुस्तक पढ़ रही थी। कमरे में रोशनी हो रही थी और बाहर गहरा अँधेरा छाया हुआ था। काले आकाश में कभी-कभी बिजली की चकाचौंध हो जाती थी, और बादल गरज जाते थे। पानी उस समय भी ज़ोर से बरस रहा था।

एकाएक दरवाज़े पर किसी ने ज़ोर से हाथ की थपकी दी। मीरा का ध्यान भंग हो गया, और उसने आश्चर्य से सोचा कि इस असमय में यहाँ कौन आया होगा। फिर दरवाज़ा खटका, और मीरा ने स्वामी का हाथ हिलाते हुए कहा—"देखो, कौन आया है!"

दिवाकर उठ बैठा, फिर अँगड़ाई लेकर कहा—"कौन आया होगा इस समय! क्या बजा है?"

मीरा ने कहा—"साढ़े दस होंगे।"

तभी द्वार पर फिर किसी ने हाथ की थपकी दी।

दिवाकर ने ज़ोर से कहा—"कौन है भाई?"

लेकिन सिवा हाथ की थपकी के कोई उत्तर नहीं आया।

तब वह उठा। मीरा ने उसे छाता देकर कहा—"देख लीजिए, कौन है !"

दिवाकर के पीछे-पीछे मीरा भी नीचे आई। द्वार के पास आकर दिवाकर ने कहा—"कौन हो जी तुम ?"

बाहर से बहुत धीमी आवाज़ आई—"ज़रा दरवाज़ा तो खोलिए।"

मीरा दिवाकर के पीछे लालटेन लिए खड़ी थी। दिवाकर ने धीरे से द्वार खोल दिया।

द्वार खुलते ही एक हृष्ट-पुष्ट युवक शीघ्रता से अंदर आ गया, और साँकल चढ़ाकर किवाड़ पर पीठ लगा दी। फिर चेहरे पर बिखरे हुए पानी को एक हाथ से पोंछकर खड़ा हो गया। मीरा एकबारगी चौंक पड़ी, लेकिन बोली कुछ नहीं। दिवाकर उस युवक की ओर देख रहा था। उसके हाथ में नाइटकैप के अंदर छिपी हुई पिस्तौल की नली देखकर वह घबरा गया। वह युवक गरम सूट पहने हुए था, जो कि पानी से बिलकुल तर था। जूते कीचड़ में सन गए थे, और भीगे हुए बालों के गुच्छे चारों ओर उलझकर मुँह तक फैले हुए थे।

दिवाकर ने कहा—"आप क्या चाहते हैं ?"

उस युवक ने कहा—"आप ज़रा इत्मीनान से मुझे बैठने की जगह दें, तब मैं कुछ कह सकूँगा। मैं देखता हूँ, इस समय एक अपरिचित व्यक्ति को देखकर आप कुछ परेशान-से हो

रहे हैं। लेकिन आप अपने को सँभालिए, मुझसे आपका कोई अनर्थ होगा, यह संभव नहीं।"

क्षण-भर के लिये उस युवक के नेत्र मीरा की ओर घूम गए और वह उसकी ओर देखता रह गया। उसके नेत्र उसके चेहरे पर जम गए। एक बार ओंठ कुछ हिले, फिर आप-से-आप बंद हो गए। मीरा ने दृष्टि नीचे कर ली।

तब दिवाकर ने कहा—"अच्छा, ऊपर चलिए।"

दिवाकर आगे-आगे हो लिया, और वह अपरिचित युवक उसके साथ-साथ चलने लगा। मीरा लालटेन आगे किए उनके पीछे चलने लगी।

जब दिवाकर और मीरा ने कमरे में पाँव रक्खे, तब वह युवक बाहर ही रुक गया। उसने कहा—"यदि उचित समझें, तो मुझे कुछ कपड़ा पहनने के लिये दे दें।"

मीरा ने शीघ्र ही धुली हुई धोती और क़मीज़ लाकर दिवाकर को दे दी। दिवाकर ने वस्त्र उस युवक को देते हुए कहा—"वहाँ दालान में जाकर पहन लीजिए। बदन पोंछने के लिये तौलिया वहीं टँगा है।"

युवक कपड़े लेकर सामने के दालान में चला गया। तब प्रश्नात्मक दृष्टि से दिवाकर ने मीरा की ओर देखा। वह नीचे देखने लगी। दिवाकर बोला—"अजीब आदमी से पाला पड़ा है। ख़तरनाक मालूम होता है। उसके पास पिस्तौल भी है।"

आश्चर्य और घबराहट से मीरा ने स्वामी की ओर देखकर कहा—"हैं ?"

दिवाकर बोला—"टोप में छिपा रक्खी है। मुझे तो उसकी नीयत अच्छी नहीं मालूम होती।"

मीरा ने धीरे से कहा—"क्रांतिकारी मालूम होता है, इस-लिये उसकी बात पर विश्वास कीजिए। उसने आश्वासन दिया है, तो हमारा अनर्थ न करेगा। वह शरणागत है।"

दिवाकर ने मीरा की करुण दृष्टि में एक बार झाँककर कहा—"न-जाने बेचारा किस मुसीबत में पड़कर आया है, सरदी से काँप रहा है। भूखा भी होगा।"

"कहें, तो कुछ बना दूँ।" मीरा ने कहा।

मीरा की ओर देखकर दिवाकर ने कहा—"हाँ, जब वह आ ही गया है, तो भूखा न जाने पाए।"

मीरा छाता लेकर बाहर निकली। तभी वह युवक कमरे में आ गया। उसने एक बार घूमकर उसकी ओर देखा, और शीघ्र ही रसोई-घर में जा पहुँची। दूसरी लालटेन जलाकर अँगीठी में कोयले रक्खे और ढेर सारा तेल डालकर आग लगा दी। चारों ओर छाए हुए गहरे अंधकार में रोशनी हो गई। फिर कभी पंखा झलकर, कभी फूँकने से फूँककर लगभग पंद्रह मिनट में उसने कोयले जला लिए।

फिर धीरे-धीरे बरसते हुए पानी में होकर वह कमरे में आ गई। वह युवक उस समय चुप था, और दिवाकर उसकी

और कौतूहल से देख रहा था। मीरा ने एक बार करुण दृष्टि से उस युवक को देखा, और अँगीठी रखकर सामने बैठ गई।

तभी बाहर से भारी जूतों की आवाज़ सुनाई पड़ी, मानो कई आदमी भागते हुए जा रहे हों। आश्चर्य से मीरा और दिवाकर ने उस युवक की ओर देखा।

वह बोला—"जी, ये पुलिस के आदमी हैं। लेकिन अब मुझे न पा सकेंगे। वे समझेंगे कि नदी तैरकर उस पार गया हूँ। कुछ हो, लेकिन मैं आप लोगों का जीवन-भर कृतज्ञ रहूँगा कि आपने मुसीबत की कुछ भी परवा न करके मुझे आश्रय दिया।"

दिवाकर ने कहा—"लेकिन आप जेल से भागे किसलिये?"

"अब यह भी मैं क्यों छिपाऊँ, जब कि आपने मुझे अपनाया है। सुनिए, मुझे चार वर्ष का कठिन कारावास-दंड दिया गया था। मैं कल ही बनारस-जेल से भागा हूँ। मेरी इच्छा से मेरे साथियों ने इसके लिये प्रबंध कर दिया था। अभी नौ बजे मैं यहाँ स्टेशन पर उतरा। न-जाने किस तरह पुलिस ने मुझे पहचान लिया, शायद सी० आई० डी०वालों के पास ख़बर आई होगी। ख़ैर, लगातार भागते-भागते इस ओर आकर पुलिस को काफ़ी पीछे छोड़ आया। मौसम बहुत ख़राब था। आपके यहाँ रोशनी देखी, सोचा, भाग्य को यहीं क्यों न आज़मा लूँ। और, आपने मुझ पर दया की।"

दिवाकर ने पूछा—"फिर जायँगे किस तरह ?"

युवक ने कहा—"इसकी आप चिंता न करें।"

मीरा नीची आँखों से अँगीठी की ओर देख रही थी। उसने युवक से पूछा—"लेकिन आपने यह नहीं बताया कि आप किसलिये भागे ?"

युवक ने एक बार उसकी ओर देखा, फिर कहा—"मैं जिस काम से भागा था, जिन भावनाओं ने मुझे अधीर कर दिया था, वह सब अब कुछ नहीं है। मैं अपने प्राणों से भी अधिक एक चीज़ को चाहता हूँ, उसकी याद ने मुझे बेचैन किया था। उसे मैंने जिस रूप में देखा, उसमें देखने की आशा न थी, फिर भी मैं संतुष्ट हूँ, प्रसन्न हूँ, और यदि अब फिर गिरफ़्तार हो जाऊँ, तो दुख न होगा। लेकिन अब गिरफ़्तार होना नहीं चाहता, क्योंकि मुझे बहुत काम करना है।"

दिवाकर ने पूछा—"किस चीज़ को देखने के लिये आपने अपना जीवन ख़तरे में डाला है ?"

युवक ने कहा—"यह न पूछिए।"

दिवाकर मुसकराके चुप रह गया, फिर मीरा की ओर देखकर कहा—"इन्हें कुछ खिलाओ-पिलाओगी नहीं ?"

मीरा रसोई-घर से सामान ले आई, और आध घंटे के अंदर ही हलुआ-मठरी और चाय तैयार कर दी। दूध सुबह के लिये रक्खा था, क्योंकि ग्वाला देर से आता है, सो उसने सोचा कि सुबह चाय न सही।

सब लोगों ने खाया-पिया, फिर दिवाकर ने मीरा से कहा—"मेरे और अपने लिये ज़मीन पर बिस्तर बिछा लो।"

युवक बोला—"नहीं। मैं लेटूँगा, तो नींद आ जायगी, इसलिये यहाँ कुरसी पर ही बैठा रहूँगा। अब दो-तीन घंटे की तो बात ही है।"

मीरा ने कहा—"आप आराम करें, जिस वक़्त कहेंगे, जगा दूँगी।"

युवक ने कहा—"जी नहीं, मैं आराम न करूँगा। आप लोग चाहें तो सोएँ। मैं जाते वक़्त आपसे कह दूँगा।"

मीरा ने अपने लिये ज़मीन पर बिस्तर बिछा लिए, और दिवाकर खाट पर लेट रहा। युवक ने वह किताब उठा ली, जो मीरा पढ़ रही थी, और पढ़ने लगा।

मीरा आधी आँखें खोले उसकी ओर देख रही थी, दिवाकर शायद सो गया था।

वह युवक चाहे कुछ न सोच रहा हो, लेकिन मीरा के सामने तीन वर्ष पहले के कुछ दिन नाच रहे थे, जब यही युवक उसके जीवन में आँधी बनकर छा गया था, जब इस युवक ने उसे एक न भूलनेवाले नशे में डुबो दिया था—जब मीरा इस पर अपने प्राणों का अर्घ्य चढ़ाने के लिये बेचैन हो गई थी, और कहा था कि वह जीवन-भर उसी की रहेगी। लेकिन एक वह भी दिन आया था, जब वह उसकी न होकर अनजान दिवाकर के जाग्रत् स्वप्नों की रानी बनकर आई थी,

और यह युवक सदा के लिये उसके पास से अलग कर दिया गया था। और, कितनी विवशता से उसने उसे भुलाया था, लेकिन वह आज इस अवस्था में फिर उसके सामने आ खड़ा हुआ है। क्या इस क्षण से पहले उसने इस बात की कल्पना की थी कि अमर यों विपत्ति में पड़कर उसके सामने आएगा, और वह उससे एक शब्द भी न कह पाएगी। अपने मन की बातें न वह सुना सकेगी, न उसके मन की सुन सकेगी।

पिछली बार जब वह मायके गई थी, तब कुसुम ने कहा था कि अमर क्रांतिकारी बन गया है, और प्राणों को हथेली पर लेकर जीवन और मृत्यु के भयानक खेल खेलता फिर रहा है। एक बार कुसुम से उसने यह भी कहा था कि वह मीरा को भुलाने के लिये ही इस पथ पर आया है। यह भी कहा था कि भुलाने के लिये शराब और दूसरे व्यसन भी हैं, लेकिन एक दिन मीरा ने कहा था कि चरित्र बनाए रखना। और आज वही अमर छाती फुलाए, लेकिन पुलिस के डर से घबराकर उसकी शरण में आया है। वह चाहती है कि जिस अमर को उसने प्राणों से भी अधिक प्यार किया है, आज जब वही अमर उसके सामने है, तब क्यों न वह अपने जीवन में संचित तमाम श्रद्धा और प्यार लेकर उसके चरणों पर लोट जाय, और आँसुओं से उसके पाँव धो डाले।

फिर वह सोचती है कि आज़ादी की लड़ाई का यह सैनिक आज उसे किस तरह भूल गया है कि सामने होने पर भी

पहचान नहीं पाता। तो क्या देश का प्रेम और स्वतंत्रता की भावना उसके मन में इस तरह बस गई है कि वह अपनी प्यारी मीरा को भी भुला बैठा है। लेकिन वह तो चाहती है कि आज जब अमर आया ही है, और उसके भविष्य का कोई ठिकाना नहीं, तो क्यों नहीं वह उसके हाथ अपने हाथों में लेकर कह देता—"मीरा, मैं तुम्हें आज भी उसी तरह प्यार करता हूँ।"

तभी उसने सुना, अमर उसके पति की ओर दृष्टि किए कह रहा है—"मिस्टर, क्या आप सो गए?"

मीरा वैसे ही लेटी रही। जब अमर ने फिर कहा—"क्या आप सो रहे हैं?" तब मीरा उठ बैठी, और कहा—"उन्हें सोने दीजिए, आपको क्या काम है?"

अमर ने कहा—"मुझे क्षमा करें, आपको जागना पड़ा—बात यह है कि इस समय मेरी तबीयत सिगरेट पीने को हो रही है, बहुत दिनों से नहीं पी।"

क्षण-भर मीरा वैसे ही बैठी रही। उसने सोचा कि जिस अमर को वह घर से रुपए चुरा-चुराकर दिया करती थी कि कहीं उसे तकलीफ़ न हो, आज वही अमर उससे किस याचना-पूर्ण ढंग से एक सिगरेट स्वयं माँग रहा है! वह चाहती है कि अभी सिर फोड़कर मर जाय।

अमर ने कहा—"मेरा ख़याल है, सिगरेट नहीं है, ख़ैर।"

"है तो, मैं अभी देती हूँ।" वह उठी और अलमारी में से सिगरेट की डिब्बी और माचिस लाकर अमर को दे दी।

अमर ने सिगरेट जलाकर कहा—"मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। रास्ते में शायद सिगरेट ख़रीदने का मौक़ा न मिले, इसलिये यदि आप कहें, तो दो-एक रख लूँ।"

"यह भी कोई पूछने की बात है!"

अमर ने कहा—"आप बहुत उदार हैं। अच्छा, अब आप सो जाएँ।"

मीरा ने कहा—"नींद नहीं आती मुझे।"

अमर मुस्कराके बोला—"मुझसे डरें नहीं, यक़ीन करें कि मुझसे ऐसा कुछ काम न होगा, जो आपके लिये अहितकर हो सके।"

मीरा ने आँसुओं से भीगे हुए शब्दों में कहा—"कैसा अच्छा होता यदि आप यह जान सकते कि मैं क्या सोच रही थी।"

मुस्कराकर अमर ने सिगरेट का धुआँ छोड़ना शुरू कर दिया। मीरा बिस्तर पर जाकर बैठ गई!

❀ ❀ ❀

जब पड़ोस के मकान की घड़ी तीन बार झनझन करके बोल उठी, तब अमर ने किताब रखकर कुरसी छोड़ दी, दोनों हाथ उठाकर अँगड़ाई ली, और दिवाकर की ओर देखकर कहा—"ज़रा उठिए, मिस्टर, मैं जा रहा हूँ।"

मीरा एकदम उठकर खड़ी हो गई। कहा—"उन्हें अभी न जगाइए, आप तैयार हो लें, तब मैं जगा दूँगी।"

कमरे से बाहर जाकर अमर ने कहा—"ज़रा रोशनी दिखा दीजिए। मैं अपने कपड़े देख लूँ।"

मीरा ने लालटेन द्वार पर रख दी, और स्वयं अमर के पीछे-पीछे दालान में जाकर खड़ी हो गई। अमर ने देखा, पेंट और कोट अभी तक गीले ही पड़े हैं। मीरा से कहा—"ये कपड़े अभी सूखे नहीं हैं। गीले पहन जाऊँगा, तो सरदी का डर तो नहीं है, लेकिन लोग संदेह करेंगे।"

"तो ये ही पहने जाइए।" मीरा ने कहा।

अमर ने एक बार अपने कपड़ों की ओर देखा, और कहा—"अच्छी बात है।"

कई मिनट हो गए, दोनों में से कोई न बोला तो अमर ने कहा—"तो उन्हें जगा दें, मैं अब जाऊँगा।"

मीरा कुछ देर चुप रही, तब अमर ने पूछा—"क्यों, आप इस तरह चुप क्यों हैं ?"

मीरा की आँखों के आँसू गालों पर ढुलक गए थे, और वह धीरे से कह रही थी—"आप मुझसे क्यों न बोले, अमर बाबू !"

अमर को ऐसा लगा, जैसे बहुत ऊँचे-से काँसे का कोई बड़ा बर्तन उसके सामने गिरा, और ज़ोर से झनझनाकर फूट गया। वह आश्चर्य से बोला—"तो तुम मीरा ही हो !"

मीरा ने सिर झुका लिया। अमर ने संयत स्वर में कहा—"मुझे संदेह हो रहा था, पर मैंने कहा नहीं।" फिर

कहा—"मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि तुम सुखी हो।" मीरा ने एक ठंडी साँस अंदर लेकर छोड़ दी। फिर कहा—"तुम यह काम छोड़ दो—यह पिस्तौल, यह पुलिस की आँखों से भागना, मुझे बड़ा डर लगा रहता था। आज तुम सामने आ गए हो, तो मैं कहती हूँ कि तुम अपनी जगह पर आ जाओ। मेरे लिये तुम जो पहले थे, वही अब भी हो।"

अमर ने कुछ देर बाद कहा—"तुम मेरी आँखों से दूर भाग गई थीं, मीरा! इसी से तो मैंने अपने जीवन को बरबाद किया।"

"तुम जेल से भागे हो, अब क्या होगा?" मीरा ने कहा।

"मुझ पर कोई केस नहीं चल रहा था, संदेह में पकड़ लिया गया था, पर मेरे साथी ज़रूर ख़तरनाक थे। मुझे तुम्हारी याद ने ही जेल से भागने को विवश किया था। अब यदि बचाव का कोई ज़रिया है, तो वह है माफ़ी! लेकिन शायद माफ़ी भी न मिले।"

"माफ़ी माँग लो, मिल जायगी।" मीरा ने कहा।

"नहीं, माफ़ी न माँगूँगा।" अमर बोला—"क्योंकि अब मैंने जेल से भागकर अपराध किया है।"

"तो...!" मीरा कुछ कह रही थी, तभी सुना दिवाकर ने। धीरे से उसे पुकारा।

वह एकदम अमर के पैरों पर अपना सिर रखकर धीरे से बोली—"मुझे भूलना मत।"

अमर ने उसे उठा लिया।

❀ ❀ ❀

मीरा ने दोपहर को अमर का सूट बक्स में रखते हुए एक बार आँखें मीचकर सीने से लगा लिया, और कहा—"तुम कब आओगे, अमर?"

अनिल और पद्मा

सोलह अगस्त का दिन कुछ अजीब ढंग से शुरू हुआ। प्रांतीय सरकार द्वारा आम छुट्टी की घोषणा हो गई थी और मुसलिम लीग के नेताओं ने प्रत्यक्ष कार्यवाही का महत्त्व अपने उत्तेजना-पूर्ण भाषणों द्वारा अपने अनुयायियों को समझा दिया था। सारे नगर में कुछ सनसनी फैली हुई थी। प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा किसी अनिष्ट की आशंका से बार-बार काँप उठती थी। समझदार व्यक्तियों ने स्त्रियों और बच्चों को सचेत कर दिया था कि वे घर से बाहर न निकलें।

अनिल गाँव का रहनेवाला है। कलकत्ते में नौकरी करता है, और प्रतिमास की पहली तारीख को पिता के नाम का मनीऑर्डर फ़ार्म भरकर रख लेता है। दूसरी तारीख़ को दफ़्तर जाते समय, पास के डाकख़ाने में जाकर, ख़ुद मनीऑर्डर भेज देता है। इस काम में कभी-कभी उसे घंटे-भर की देर दफ़्तर जाने में हो जाती है। बड़े बाबू उसके काम से प्रसन्न हैं, इसलिये देर का कारण तक नहीं पूछते। अनिल राष्ट्रीय विचारों का युवक है। कुछ फ़ासले पर स्थित पाकिस्तान रेस्टोरेन्ट में भी कभी-कभी चाय पी लेता है। वहाँ आम तौर से लोफ़र युवक दिन-भर बैठे रहते हैं। अनिल उनकी ओर ध्यान नहीं देता। कभी-कभी उसके

कानों में उन लोगों की बातें पड़ती हैं, तो वह जानता है कि वे पाकिस्तान और जिन्ना आदि शब्दों को बार-बार, बड़े आदर से, दोहराते हैं।

अनिल जिस मकान में रहता है, वह मकान तीन मंजिल का है। नीचे के हिस्से में कुछ मारवाड़ियों और बंगालियों की दूकानें हैं। बीचवाली मंजिल की कोठरियों में मध्यवर्ग के लोग रहते हैं। वह भी इसी मंजिल की एक कोठरी में, गत डेढ़ वर्ष से, रहता है। सबसे ऊपर के तीन बड़े कमरों में बंगाली बालक-बालिकाओं का प्राइमरी स्कूल है। स्कूल जब बंद हो जाता है, तब से खुलने तक जीने के दरवाजे में ताला पड़ा रहता है। इस तरह दूसरी मंजिल निचले और ऊपरी हिस्से से अलग रहती है। गर्मियों की रातें, किराएदारों को अपनी कोठरियों में ही बितानी पड़ती हैं। छत, स्कूल के बीच में होने के कारण, किसी के प्रयोग में नहीं आ पाती। हवा आने के लिये प्रत्येक कोठरी में एक-एक खिड़की है। कमरों के सामने का गलियारा सकरा है। इसलिये लोग वहाँ नहीं सो सकते।

अनिल के कमरे की खिड़की बड़ी सड़क के ओर पड़ती है, और मकान का सदर दरवाजा गली में है। दूकानें दोनों ओर हैं। सदर दरवाजे के सामने की ओर हिंदुबस्ती है और मकान के पिछवाड़े की ओर, एक गली छोड़कर, मुसलिम बस्ती।

अनिल के मित्र कम हैं, परिचितों की संख्या पर्याप्त है। उसे युक्त प्रांत के युवकों से घनिष्ठता बढ़ाने में हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव होता है। राकेश से उसकी घनिष्ठता है, और यही कारण है कि डेढ़ साल एक साथ काम करने से वह काफी अच्छी हिंदी बोलने लगा है।

पिछले दिन दफ्तर बंद होते समय दोनों में तय हो गया था कि कल की छुट्टी सिनेमा देखकर मनाई जायगी। सिनेमा-घर राकेश के मकान से पास पड़ता है, इसलिये अनिल ने कह दिया था कि वही राकेश के घर पहुँच जायगा, और राकेश की पत्नी द्वारा बनी चाय और बेसन की पकौड़ियों का नाश्ता करके दोनों सिनेमा जायँगे।

❀ ❀ ❀

पिछली बार जब बंबई में रॉयल इंडियन नेवी-संबंधी विद्रोह का साथ देने के लिये कलकत्ते में उपद्रव हुआ था, तब उसने कॉलेज से होस्टल जाती हुई युवती पद्मा को सहायता दी थी। तब से पद्मा और अनिल की भेंट अक्सर होती है। आकस्मिक परिचय की वह संकटमयी वेला अनिल को बड़ी लुभावनी लगती है। उस बात को वह अक्सर सोचा करता है। वह पद्मा के साथ दो-एक बार सिनेमा भी देख चुका है। वह जानता है कि पद्मा की जो सहायता कर्तव्य से प्रेरित होकर उसने की थी, उसे पद्मा कितना अधिक महत्त्व देती है, और यदा-कदा उस उपकार की बात छेड़कर अनिल

के प्रति कृतज्ञता भी प्रकट करती रहती है। हालाँकि उस बात को सुनना अनिल पसंद नहीं करता।

उस घटना ने अनिल और पद्मा के बीच घनिष्ठता की एक डोर बाँध दी है, जिसे दोनो की भावनाएँ बहुत मधुर, बहुत आकर्षक और बहुत स्थिर अनुभव करती हैं। दोनो के विचारों में जो अंतर था, उसे मन की कोमलता ने दूर कर दिया है। पद्मा एक जमींदार की पुत्री है, और अनिल का परिवार ग़रीब है। इस ऊँच-नीच को पद्मा ने अपने मन के किसी कोने में कभी स्थान नहीं दिया।

गत रविवार को दोनो कई घंटे साथ रहे थे। उसी दिन वह उसके घर भी आई थी, और छोटे-से कमरे की सफ़ाई और अलमारी में लगी पुस्तकों का चुनाव देखकर बड़ी खुश हुई थी। उसी दिन दोनो में खुलकर बातें हुई थीं।

पद्मा ने कहा था—"उस दिन मेरी जीवन-रक्षा करके तुमने मुझ पर जो उपकार किया था, बताओ तो कि उसका बदला कैसे चुकाऊँ।"

"बदले के लिये उपकार नहीं किया जाता, पद्मा!"

अनिल की बात का जवाब पद्मा से नहीं दिया गया था। वह कहने लगी थी—"मैं बड़े लाड़-प्यार में पली हूँ। मेरे संबंध में माता-पिता मेरी इच्छा के विरुद्ध नहीं जा सकते।"

"लेकिन मेरी जिंदगी तकलीफ़ों में बीती है, और मेरा पहला

कर्तव्य माता-पिता की सेवा करना है। मैं अपनी इच्छाओं का स्वामी नहीं हूँ पद्मा !"

साहस करके पद्मा ने कहा था—"क्या जीवन-संगिनी खोजने के संबंध में भी तुम्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध जाना होगा ?"

"शायद नहीं, क्योंकि जिसे मैं पसंद करता हूँ, यदि वह मेरी बन सकी, तो माता-पिता निहाल हो जायँगे।"

पद्मा जानती है। सुनकर मुस्कराई। कहने लगी—"मुझे इतनी निर्लज्ज मत समझना अनिल, कि मैं खुद अपने अधिकार की बात कहूँ।"

उस दिन अनिल का रोम-रोम नशे में चूर हो गया था। वह उस नशे को सदा क़ायम रखना चाहता है, क्योंकि ख़ुमारी से नशेबाज़ को नफ़रत होती है।

अनिल ने सोचा कि पहले पद्मा से भेंट करेगा। कुछ देर उससे बातें करने के बाद राकेश के यहाँ चला जायगा। पद्मा से क्षमा माँग लेगा कि मित्र ने वचन ले लिया है। आज उसके साथ ही भोजन करके दिन-भर घूमेगा, और सिनेमा जायगा।

उस समय अनिल तैयार हो रहा था, जब कि उसने धीरे-धीरे बढ़ते हुए शोर-गुल की ओर ध्यान दिया। खिड़की के नीचे से लीग के झंडे लिए, उत्तेजना-पूर्ण नारे लगाता हुआ एक छोटा जुलूस निकल गया, और कुछ ही देर बाद हंगामा

मच गया। लोग इधर-उधर दौड़ने लगे। मकान का सदर दरवाज़ा बंद कर दिया गया। जिन लोगों के घरवाले बाहर थे, वे परेशान होकर गलियारे में चक्कर लगा रहे थे। अनिल स्तब्ध रह गया। खिड़की से झाँककर देखा, चीख़ की दर्द-भरी आवाज़ें सुनाई पड़ीं। बीच चौराहे पर कई आदमियों के एक गिरोह में झगड़ा हुआ। भीड़ कुछ क्षण बाद छँट गई, और सड़क पर कई व्यक्तियों के मृत और घायल शरीर दिखाई दिए। अनिल ने खिड़की बंद कर ली। साहसी युवक होने पर भी वह भयभीत हो रहा था। शोर बढ़ता जा रहा था। सारी महानगरी में एक साथ सांप्रदायिक उपद्रव शुरू हो गए थे।

इसी समय किसी ने द्वार पर दस्तक दी। अनिल ने किवाड़ की संधि से झाँककर देखा—पड़ोस के कमरेवाला टाइपिस्ट था। द्वार खोल दिया। जल्दी से टाइपिस्ट बोला—"फ़ौरन कमरा बंद करके ऊपर चले जाइए।"

स्कूल का ताला तोड़कर सब किराएदार छत पर पहुँच गए थे। अनिल भी वहाँ चला गया। ऊपर से दिखाई दिया कि सड़क पर उपद्रवी लोग स्वच्छंद होकर घूम रहे हैं। दूकानों और मकानों के दरवाज़े तोड़े जा रहे हैं। शहर के कई भागों से धुआँ उठ रहा है—मकानों में आग लगाई गई थी। तूफ़ानी शोर बढ़ता जा रहा था। औरतों-बच्चों के चीत्कार हृदय को बेध रहे थे। रोने की आवाज़ें आ रही थीं।

अचानक सड़क पर एक लॉरी रुकी। लाठियों और छुरियों से लैस बीस-पचीस व्यक्ति उतर पड़े। तीन-चार पेट्रोल और किरोसिन ऑयल की टीनें लिए थे।

अनिल के पास खड़ा एक व्यक्ति भयभीत स्वर में बोला—"ये लोग आग लगाएँगे! हे प्रभो, अब क्या होगा?"

अनिल क्या जवाब देता। सबके चेहरे पीले पड़ गए थे, और हृदय पर भय की भावना छाई हुई थी। सचमुच पेट्रोल और मिट्टी का तेल डालकर दूकानों में आग लगाई जा रही थी। चारों ओर मकानों की छतें भयभीत स्त्री-पुरुषों और बच्चों से भरी हुई थीं। नीचे दूकानें लुट रही थीं, आग लगाई जा रही थी, और आने-जानेवाले राहगीरों को क़त्ल किया जा रहा था। चारों ओर अराजकता फैली हुई थी। खुले आम अनर्थ हो रहा था।

एक मकान की छत से उपद्रवकारियों पर ईंटों की वर्षा हो रही थी। किंतु उन पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था।

टाइपिस्ट और कुछ दूसरे व्यक्ति एक दीवार को तोड़ने का प्रयत्न कर रहे थे। अनिल भी उधर बढ़ा। दीवार तोड़ दी गई, और उपद्रवकारियों पर ईंटों की वर्षा की जाने लगी। किंतु वे लोग किनारे हो गए थे, और ईंटें व्यर्थ जा रही थीं। सामनेवाले मकान का निचला हिस्सा तेजी के साथ जल रहा था। उस मकान की छत पर खड़े लोगों में भगदड़ मच गई।

किंतु जब वे लोग नीचे उतरकर भागने को हुए, तो उन पर हमला कर दिया गया। ऊपर से देखनेवालों ने आँखें मीच लीं। मौत चारों ओर नाच रही थी। उसका रूप बड़ा भयानक था। मरनेवालों की चीखें और मारनेवालों के नारे आकाश तक गूँज रहे थे।

इसी समय नीचे से उठनेवाले धुएँ के बादलों की ओर इंगित करके टाइपिस्ट बोला --"बिल्डिंग में आग लगा दी गई।

सब लोग नीचे की ओर लपके। दूकानें धायँ-धायँ जलने लगी थीं। सामनेवाला मकान गिरने लगा था, और लपटें आसमान की ओर उठ रही थीं।

नीचे उतरना बेकार था। दूसरी मंजिल तक आग आ चुकी थी। लोगों ने अपने-अपने कमरों से क़ीमती सामान निकालने की कोशिश की। लेकिन भागकर कहाँ जायँ। टाइपिस्ट नीचे उतरने लगा। लोगों ने उसे रोका, लेकिन जले हुए सदर दरवाज़े को तेजी से पार करके जब वह सड़क पर पहुँचा, तो किसी ने उसके छुरा मार दिया—एक चीख़ शोर में ग़ायब हो गई, और वह तड़पकर गिर पड़ा।

कुछ देर बाद जलकर मरना सबको स्वीकार हुआ, बनिस्बत इसके कि सड़क पर निकलकर छुरी का शिकार बनें। पूरा चौराहा अग्निमय था। अनिल अन्य लोगों के साथ छत पर खड़ा था। एक लॉरी की आवाज़ सुनाई पड़ी। सबने इस आशा से उधर देखा कि शायद पुलिस हो, किंतु

उस लॉरी पर कुछ गुंडे कुछ लड़कियों को पकड़े बैठे थे। लड़कियों के कपड़े फट गए थे, और वे बुरी तरह चीख रही थीं—"बचाओ-बचाओ।" लेकिन उन्हें कौन बचाता? कायरता ...ओं का स्वीकार नहीं करा।

तभी अनिल की नजर अ...क उस लॉरी में खड़ी पद्मा पर पड़ी। उसे कुछ गुंडे ...े हुए थे। अनिल चौंक पड़ा। उसके मुंह से एक पुकार ...कली—"पद्मा" और लॉरी चली गई।

अनिल नीचे की ओर भा—तभी पूरी बिल्डिंग ज़ोर की आवाज़ें करती हुई जल-जकर गिरने लगी!

अनिल इस समय दोनों ...र से जलते हुए गलियारे में था—सीढ़ी उतरने से पहले। छत उसके ऊपर गिरी और वह दब गया! कुछ ही देर ...बा पूरी बिल्डिंग ज़मीन पर ढेर हो गई!

कलकत्ता नगर ऐसा लग ...हा था, जैसे किसी विदेशी ...ज्य की संगठित सेना ने आक्रमण किया हो।

❀ ❀ ❀

देश-भर में उत्सुकता से अख़बार पढ़े जा रहे थे, रेडियो सुना जा रहा था—कलकत्ते की घटनाओं में दिलचस्पी लेते हुए यह सोचा जा रहा था कि भविष्य में ऐसी खूँ-रेज़ी से ...े जान-माल की रक्षा की जाय।

सात हज़ार मरे, बीस हज़ार घायल हुए! लड़कियों के

होस्टल, दूकानें और मकान जलाए गए ! करोड़ों की लूट हुई बलात्कारों का ज़ोर ! स्त्री-पुरुष पुल पर से गंगा में फेंके गए सरकार ने ढील से काम लिया । बच्चों का क़त्ल ! घेरा डालकर सैकड़ों व्यक्तियों को ज़िंदा जलाया गया । और ऐसे समाचार थे, जिन्हें सुनकर प्रत्येक व्यक्ति दिल बैठा जाता था । क्या इतिहास में ऐसा भीषण सांप्रदायिक रक्तपात कभी और भी हुआ था ?

कोई कहता है, गवर्नर अयोग्य; कोई कहता है, मिनिस्टरी को बरख़ास्त करो; कोई कहता है, मिनिस्टरी का बाक़ायदा कोर्ट में ट्रायल हो; कोई कहता है, ऐसे उपद्रवों का जवाब दिया जाय । और, अनिल की आत्मा देख रही है कि एक गंदी और अँधेरी कोठरी में तीसरे दिन पद्मा को होश आता है । वह भूखी-प्यासी , अनर्थों का शिकार है । उसके गालों पर दाँतों के बड़े-बड़े घाव हैं । पीड़ा से कराहते हुए चारों ओर देखती है । पास ही उसकी एक वस्त्र-विहीना सहपाठिनी मृत अवस्था में पड़ी है । उसके चारों ओर की ज़मीन पर ख़ून सूख गया है । पद्मा आँखें फाड़े काँपते हुए खड़ी हो जाती है । अंदर से कोठरी की साँकल बंद कर लेती है, और दीवार से सिर फोड़ने लगती है । घंटे-भर बाद उसके तन से प्राण गायब हो जाते हैं, और अनंत में दो निष्पक्ष दिलों की एक आह सुनाई पड़ती है ।